युगांत

युवक क्रांतिदल का मुखपत्र

रेखा चित्र : कमलेश शर्मा

सत्य कहाँ है ?
खोजो मत ।
खोजने से सत्य मिला ही कब है ?
क्योंकि खोजने में खोजने वाला जो मौजूद है ।
इसलिए खोजो मत—खो जाओ ।
जो स्वयं मिट जाता है, वह सत्य को पा लेता है ।
मैं नहीं कहता 'जिन खोजा तिन पाइयां' ।
मैं कहता हूँ 'जिन खोया तिन पाइयां' ।

युक्रांद

आचार्य श्री रजनीश जी की
सृजनात्मक जीवन दृष्टि का
पाक्षिक संकलन-पत्र

मानसेवी संपादक
अजित कुमार

सहसंपादक
आलोक पांडे

वर्ष १ अंक ५
१६ अगस्त १९६९

मूल्य
६० न. पै. एक प्रति
वार्षिक १२ रु.

मुखपृष्ट लेआउट
शशिन यादव

दो शब्द--

आचार्य श्री रजनीश ने रुके हुए चिन्तन को एक जबरदस्त धक्का दिया है और हमें नये सिरे से सोचने विचारने के लिए विवश कर दिया है।

अब तक की विकसित सभी संस्कृति और सभ्यता, धर्म और नीति, दर्शन और चिन्तन—मान्यताओं, धारणाओं और विश्वासों—सभी के समक्ष उन्होंने एक वृहत् प्रश्न चिन्ह लगा दिया है।

राष्ट्र के सम्बंध में उनका जो मौलिक चिन्तन है, हमारा ऐसा मानना है कि वह देश को दिशा एवं गति दे सकता है।

इस दिशाहारा देश को वह गति दे और इसके मृत प्राणों में एक नई सांस फूंक दे, इसी कामना के साथ युक्रांद का यह अंक आपके हाथ में है!

सप्रेम---

युक्रांद परिवार

एक पहाडी सराँय में एक पाला हुआ तोता था। उसके मालिक ने जो उसे पढ़ाया था, वह उसी को दिन-रात दुहराया करता था। वह कहा करता था "स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, स्वतंत्रता!" एक यात्री उस सराँय में पहली बार ठहरा था। उस तोते की वेदना भरी वाणी उसके मर्म को छू लेती थी। वह भी अपने देश की स्वतंत्रता के युद्ध में अनेक बार कैद रह चुका था। और वह तोता जब उस पहाड़ी के सन्नाटे को तोड़कर कहता "स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, स्वतंत्रता", तो उसके हृदय के तार झनझना उठते थे। उसे अपने कैद के दिनों की स्मृति हो आती और स्मरण हो आता कि ऐसे ही तो उसकी अंतरात्मा भी चिल्लाती थी "स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, स्वतंत्रता!"

रात्रि हो गई तो वह यात्री उठा और उसने स्वतंत्रता के आकांक्षी उस तोते को उसकी कैद से मुक्त करना चाहा। यात्री तोते को उसके पिंजड़े से बाहर खींचता था, लेकिन तोता निकलने को राजी नहीं होता था। और विपरीत अपने सींकचों को पकड़कर वह चिल्लाता था "स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, स्वतंत्रता!" बड़ी मुश्किल से यात्री तोते को बाहर निकाल पाया। उसे आकाश में उड़ाकर वह निश्चित हो सो गया। लेकिन सुबह ही उठकर उसने देखा कि तोता अपने पिंजड़े में आनन्द से बैठा है और चिल्ला रहा है "स्वतंत्रता, स्वतंत्रता, स्वतंत्रता!"

युवक युवतियों के बीच क्रांति की चिन्गारियाँ

हिन्दुस्तान की जवानी तमाशबीन हो गई है। हम जीवन में ऐसे खड़े होकर देखते रहते हैं जैसे कोई जुलूस निकल रहा है और हम रुके हुए देख रहे हैं। शोषण हो रहा है—जवान खड़ा हुआ देख रहा है। बेवकूफियां हो रही हैं जवान खड़ा देख रहा है। बुद्धिहीन लोग देश को नेतृत्व दे रहे हैं—जवान खड़ा हुआ देख रहा है। जड़ता धर्म गुरु बनकर बैठी है—जवान खड़ा हुआ देख रहा है। यह कैसी जवानी है ? मुल्क के सारे प्राण नष्ट हुए जा रहे हैं। शोषण से लड़ना पड़ेगा; जिन्दगी को विकृत करने वाले तत्वों से लड़ना पड़ेगा, तो जवानी निखरेगी, तो देश की आत्मा ऊंची उठेगी। बिना लड़ाई के जवानी निखरती नहीं। जवानी सदा लड़ती है और निखरती है, जितना लड़ती है उतना निखरती है।

●●●

युवक यदि कोई शारीरिक अवस्था है तब तो हमारे पास भी युवक हैं। युवक अगर कोई मानसिक दशा है (State of mind) तो युवक हमारे पास नहीं हैं। अगर युवक हमारे पास होते तो देश में इतनी गंदगी, इतनी सडांध, इतना सड़ा हुआ समाज जीवित रह सकता था ? कभी की उन्होंने आग लगा दी होती। युवक अगर हमारे पास होते, एक हजार साल तक हम गुलाम रहते ? कभी की गुलामी को उन्होंने उखाड़ फेंका होता। अगर युवक हमारे पास होते तो हम हजारों साल तक दरिद्रता और दीनता और दुख में बिताते ? हमने कभी की दरिद्रता मिटा दी होती या खुद मिट गये होते। इतने दिनों तक धर्म, जाति और वर्ण के कटघरों में जीते ? युवक हमारे पास होते तो इतना पांखड इतना अंधविश्वास पलता इस देश में ? युवक बरदाश्त करते ? एक-एक करोड़ रुपये यज्ञों में जलने देते, युवक अगर मुल्क के पास होते तो और अब मैं सुनता हूं कि और भी करोड़ों रुपयों को जलाने का इन्तजाम करने के लिए साधु सन्यासी लालायित हैं और युवक ही जाकर चंदा इकट्ठा करेंगे और वालंटियर बनकर उस यज्ञ को करवायेंगे जहाँ देश की संपत्ति निपट गंवारों में जलेगी। अगर युवक मुल्क में होते तो ऐसे लोगों को अपराधी कहकर अदालतों में पकड़कर खड़ा किया गया होता जो मुल्क की संपत्ति को इस भांति बर्बाद करते हैं।

●●●

लेकिन युवक मुल्क में नहीं हैं इसलिए किसी भी तरह की मूढ़ता चलती है, इसलिए किसी भी तरह का अंधकार चलता है। युवकों के होने का सबूत नहीं मिलता देश को देखकर। क्या चल रहा है देश में ? युवक किसी भी चीज पर राजी हो जाते हैं। वह युवक कैसा जिसके भीतर विद्रोह न हो, रिवल्यूशन न हो ? फिर युवक होने का मतलब क्या हुआ उसके भीतर ? जो गलती के सामने झुक जाता हो उसको युवक कैसे कहें ? जो टूट जाता हो लेकिन झुकता न हो, जो मिट जाता हो लेकिन गलत को बरदाश्त न करता हो, वैसी स्प्रिट, वैसी चेतना का नाम ही युवक होना है। वैसी आत्मा विद्रोही की जो झुकना नहीं जानती, टूटना जानती है। जो बदलना चाहती है जिन्दगी को नई दिशाओं में नये आयामों में। क्रांति की यह उद्दाम आकांक्षा ही युवा होने का लक्षण है। कहाँ है क्रांति की वह उद्दाम आकांक्षा ?

●●●

(अगले अंक में प्रस्तुत एक प्रवचन की कुछ झलकियां)

स्वाधीनता दिवस पर विशेष

व्यक्ति को शांति और समाज को क्रांति

कबीर एक छोटे से गाँव से गुजरते थे। गाँव के पहिले ही झोपड़े पर खड़े हो वे रोने लगे। एक औरत चक्की पीसती थी। आटा पीसती थी। कबीर रोने लगे और अपने साथियों से कहने लगे कि चक्की चलती देखकर मुझे बहुत आँसू आ गये। क्योंकि चक्की के दो पाटों के बीच जो भी पड़ जाता है, वह नष्ट हो जाता है। लेकिन कबीर के साथियों में, उनका बेटा भी था। वह कबीर को रोते देखकर हँसने लगा। और उसने कहा कि जो दो पाटों के बीच पड़ जाता है, वह नष्ट तो हो ही जाता है, लेकिन आपने ख्याल नहीं किया कि चक्की की कील के पास जो गेहूं के दाने पहुंच जाते हैं, जो कील का सहारा ले लेते हैं, उन्हें चक्की के पाट पीस नहीं पाते और वे बच जाते हैं। जिन्दगी बहुत अनूठी है। वहाँ पिस जाने की सुविधा भी है और बच जाने का मार्ग भी है। जिन्दगी के दो पाट भी हैं, लेकिन जिन्दगी में एक कील भी है। जो उसका सहारा ले लेता है, उसका नष्ट होना असम्भव है। चक्की को चलते आपने भी देखा होगा। न आप रोये होंगे और न हंसे होंगे। क्योंकि आपको दिखाई भी नहीं पड़ा होगा कि जिन्दगी एक बड़ी चक्की भी है। ये ख्याल भी नहीं आया होगा कि जीवन भर दो बड़ी पाटों के बीच पिसते हैं। बहुत कम सौभाग्यशाली लोग हैं, जो उस कील का सहारा ले लेते हैं, जहाँ पिसना बंद हो जाता है और पहुंचना शुरू हो जाता है, जहाँ मौत समाप्त हो जाती है और अमृत के द्वार खुल जाते हैं।

ये जो मैंने कबीर की चक्की से अपनी बात शुरू करनी चाही है—कुछ सोचकर। पहली तो यह कि जिन्दगी एक 'PARADOX' है, एक विरोध, एक पहेली है। जिन्दगी उल्टी चीजों से बनी हुई है। आकाश की तरफ जाता है वृक्ष। लेकिन हमें ख्याल भी नहीं होता कि आकाश की तरफ जाते हुए वृक्ष के प्राण उन जड़ों में छुपे हुए हैं, जो पाताल की तरफ जा रही हैं। वृक्ष उनके ऊपर जीता है, जो उल्टी तरफ जा रहीं हैं। वृक्ष खोज रहा है आकाश को और जड़ें खोज रहीं हैं पाताल को। और जितना ऊंचा वृक्ष होगा, उतने ही नीचे जड़ें होंगी। ऊंचे वृक्ष के लिए जड़ों का नीचे चला जाना जरूरी है। वृक्ष दिखाई पड़ता है, और जड़े दिखाई नहीं पड़तीं। वृक्ष फैलता है, प्रगट होता है; जड़ें छिपती हैं, अप्रगट रहती हैं। अप्रगट जड़ों पर प्रगट वृक्ष रहता है। बड़ी उल्टी दुनिया है! रास्ते पर चलते हम देखते हैं एक बैलगाड़ी को। चाक घूमता है जोर से कील खड़ी रहती है, जरा भी नहीं घूमती। लेकिन उस खड़ी कील पर ही चाक के घूमने का अस्तित्व निर्भर है। अगर कील भी घूम जाय तो चाक का घूमना उसी वक्त बंद हो जायगा। चाक गिर जायगा। कील खड़ी है, इसलिए चाक घूमता है। चाक घूम सके, इसलिए कील को घूमना नहीं पड़ता है। बड़ी उल्टी दुनिया है! नहीं घूमती हुई कील पर घूमते हुए चाक का सब कुछ निर्भर है। जीवन को जितना ही हम खोजेंगे, पायेंगे जीवन एक रहस्य है। एक पहेली है एक विरोध है। वहाँ उल्टी चीजों में खिचाव है और तनाव है। पुरुष, स्त्री से आकर्षित है क्योंकि स्त्री पुरुष नहीं है। स्त्री, पुरुष के पीछे दीवानी है, क्योंकि स्त्री, पुरुष नहीं है। वे जो विद्युत को जानते हैं—वे कहते हैं कि उनके नकारात्मक विधायक छोर, एक दूसरे को खींचते हैं। जीवन एक बड़ी अजीब कहानी है। एक छोर जन्म, दूसरा छोर उसकी मृत्यु है।

जन्म हुआ और मृत्यु आनी शुरू हो जाती है। बड़ी उल्टी है यह बात ! आदमी पैदा हुआ और मरना शुरू हो गया। जिस क्षण हम पैदा होते हैं, हम मरने की यात्रा में हैं। जन्म का दिन भी, मृत्यु का दिन भी है। एक सांस बाहर जाती है और बाहर जा भी नहीं पाती कि दूसरी भीतर आना शुरू हो जाती है। दिन भर हम जागते हैं और रात को सो जाते हैं। अगर एक दिन न सो सके तो जागना भी मुश्किल हो जाता है। और हम दिन भर जागे न रहें, तो रात में सोना भी असम्भव है। श्रम करते हैं दिन भर इसलिए विश्राम कर सकते हैं। श्रम और विश्राम बड़े उल्टे हैं। लेकिन जो विश्राम कर लेता है, वह श्रम करने की शक्ति को बढ़ा लेता है। जो श्रम ही करता रहेगा, वह टूट जायगा, नष्ट हो जायगा। विश्राम करना भी जरूरी है। जो विश्राम ही न करेगा,

"जीवन बड़ी उल्टी चीजों पर खड़ा हुआ है। आती हुई साँस और जाती हुई साँस, दोनों जुड़ी हुई हैं। जन्म और मौत जुड़े हैं। दिन उजाले से भरा है, क्योंकि रात अंधेरी है।"

वह मर जायगा। श्रम करना भी जरूरी है। जीवन बड़ी उल्टी चीजों पर खड़ा हुआ है ! आती हुई सांस और जाती हुई साँस, दोनो जुड़ी हैं। जन्म और मौत जुड़े हैं। दिन उजाले से भरा है क्योंकि रात अंधेरी है। रात अंधेरी न हो तो दिन में रोशनी न रह जायेगी। इसलिए जो जानते हैं—वे कहते हैं—जब रात बहुत अंधेरी होती है तो समझ लेना कि सुबह करीब आ गयी है। रात अंधेरी हो तो सुबह करीब आ जाती है। रात और दिन तो उल्टे हैं। रात और दिन का क्या सम्बंध है ? लेकिन जो जानते हैं वे कहते हैं कि जब दिये की ज्योति जोर से जलने लगे तो बुझने का वक्त आगया है। समझ लेना कि बुझने का वक्त आ गया है। जब कोई पहाड़ की ऊंची से ऊंची चोटी पर पहुंच जाता है, तब खाई में गिरने का क्षण करीब आ जाता है। जवानी पूरे जोश में होती है, तब बुढ़ापे की यात्रा शुरू हो जाती है। बड़ी अजीब है यह बात ! जो चढ़ते हैं, उनका गिरना शुरू हो जाता है। ये सारा का सारा जीवन उल्टी चीजों से मिलके बना है। और जीवन की कला यह है कि हम उल्टी चीजों को सम्हालने में समर्थ हो जायें। जो 'Art of Living' है, जो जीवन की कला है, वह एक ही बात पर निर्भर है, एक ही सूत्र में कि "हम उल्टी चीजों को सम्हालने में समर्थ हो जायें।"

बुद्ध का एक शिष्य था—श्रोण। वह एक बड़ा राजकुमार था। वह सन्यासी हो गया। उसने बहुत भोग भोगा था। उसके पास बड़े महल थे, धन था, उसने बहुत सुख जाने थे। फिर जब वह साधु हो गया, सन्यासी हो गया, तब बुद्ध के भिक्षु पूछने लगे कि जिसके पास सब था, उसने सब क्यों छोड़ दिया ? बुद्ध ने कहा—तुमको पता नहीं जिन्दगी बड़ी उल्टी है। जिनके पास सब होता है, वे छोड़ने को उत्सुक हो जाते हैं। जिनके पास कुछ नहीं होता, वे इकट्ठा करने में पीड़ित हो जाते हैं। बुद्ध ने कहा—गरीब, अमीर होना चाहता है और अमीर, अमीर होने के बाद समझ पाता है कि गरीब होने का मजा कुछ और ही है। धनवान, धन से भागने लगते हैं और निर्धन, धन की यात्रा करते हैं। अज्ञानी सोचते हैं, कि ज्ञान मिल जायेगा तो न मालूम क्या मिल जायगा और जो ज्ञानी हैं, वे ज्ञान छोड़कर अज्ञानी हो जाते हैं और कहते हैं—हम कुछ भी नहीं जानते ! इस आदमी के पास बहुत था, इसलिए सब छोड़कर यह भाग रहा है। बुद्ध के भिक्षु कहने लगे-- लेकिन सुना है हमने—यह तो फूलों के रास्तों पर चलता था और अब नंगे पैर कांटों के रास्ते पर चलना बहुत दुखद होगा। बुद्ध ने कहा—तुमको कुछ भी पता नहीं। तुम तो कांटों से बचते हो, वह तो कांटों की तलाश करेगा। और यही हुआ। वह जो आदमी बहुत सुन्दर राजकुमार था, और भिक्षु वस्त्र पहनते थे और श्रोण ने वस्त्र भी छोड़ दिये। वह नंगा ही रहने लगा। दूसरे भिक्षु राजपथों पर चलते थे वह पगडंडियों पर चलता जिन पर कांटे और पत्थर होते। ६ महीने के भीतर उसके पैर पर घाव बन गये। दूसरे भिक्षु छाया में बैठते, श्रोण धूप में खड़ा

रहता। दूसरे भिक्षु रोज भोजन करते, श्रौण दो-दो, तीन-तीन दिन बाद भोजन करता। दूसरे भिक्षुक रात भर सोते, श्रौण ने सोना भी छोड़ दिया। उसकी सुन्दर देह कुमल्हा गई। उसकी फूल सी आंखें मुर्झा गईं। उसके शरीर को पहचानना मुश्किल हो गया। क्या वह यही आदमी है। सूख गया है। छह महीने बाद बुद्ध, श्रौण, के पास आये और कहा—श्रौण, मैं एक बात पूछने आया हूं। मैंने सुना है—जब तुम राजकुमार थे, तब वीणा बजाने में बहुत कुशल थे। तेरी वीणा की बड़ी कीर्ति थी। दूर दूर के लोग तेरी वीणा सुनने के लिए बाहर खड़े रहते थे। दीवाल के पास भीड़ खड़ी रहती थी। हर आदमी को तेरे महल में प्रवेश तो नहीं था। एक बार मैं भी, तेरी वीणा के स्वर सुनकर दो क्षण रुक गया था। श्रौण ने कहा—हाँ—याद आता है। पर किसलिए मेरी स्मृति को छेड़ते हैं ? बुद्ध ने कहा—मैं कुछ पूछने आया हूं—मैं यह पूछने आया हूं कि वीणा के तार अगर बहुत ढीले हों, तो संगीत पैदा होता है ? श्रौण हँसने लगा—कैसी पागल जैसी बात करते हैं आप ! तार ढीले होंगे तो संगीत कैसे पैदा होगा ? ढीले तार पर टंकार पैदा नहीं होती। ढीले तार से कहीं संगीत पैदा हुआ है। श्रौण कहने लगा कि संगीत पैदा कर लेना तो बहुत आसान है। लेकिन तार को उस जगह ले आना, जहाँ से संगीत पैदा होता है, उसे उस्ताद और कला गुरु जानते हैं। यह तो कोई भी सीख सकता है वीणा बजाना। लेकिन वीणा को उस हालत में ला देना, जहाँ से वीणा बजती है, बड़ी कला की बात है। तार ढीले नहीं होने चाहिए। बुद्ध ने कहा—अगर तार बहुत कसे हों तब ? श्रौण कहने लगा—तब तार टूट जाते हैं। तब संगीत पैदा नहीं होता। तार टूट जाते हैं। बहुत ढीले हों तो संगीत पैदा नहीं होता। तो बुद्ध ने कहा—तो तार कैसे होने चाहिए ? उस श्रौण ने कहा—उलझन में डाल दिया आपने। बड़ी कठिन बात है, उसे कहना मुश्किल है। तार ऐसे होने चाहिए—जो न कसे हों, न ढीले हों। क्या अवस्था होगी उन तारों की ? श्रौण ने कहा—मुश्किल है यह बात बताना। तारों की एक अवस्था है—न जब वे कसे होते हैं और न ढीले होते हैं। बीच में होते हैं। उस बीच को साध लेना ही कला है। फिर संगीत पैदा होता है। बुद्ध ने कहा—मैं चला। मैं कहने आया था कि जिस तरह वीणा के मध्य में संगीत पैदा होता है, उसी तरह जीवन को वीणा के तार वैसे होने चाहिए—जो न बहुत कसे हों, न बहुत ढीले। बहुत ढीले तार थे तेरी जीवन वीणा के वह भी तेरी जिन्दगी थी। अब तूने तार बहुत कस लिए तेरी जीवन वीणा के, त्याग ही तेरा लक्ष्य हो गया है। लेकिन कहने यही आया था—कि जीवन वीणा के तार ऐसे होने चाहिए कि न ढीले न कसे। बीच में तारों की एक अवस्था है। वहीं से जीवन का संगीत भी पैदा होता है। जीवन की कला का एक ही सूत्र है। दो विरोधों के बीच में अविरोध। दो तनाओं के बीच में तनाव मुक्ति। दो अतियों के बीच दो (Extreme) के बीच (Balance) संतुलन।

यह जो आज की बात है—**व्यक्ति को चाहिए शांति और समाज को क्रांति**—यह भी दो अतियों के बीच संतुलन को साधने की बात है। दोनों में से एक को

"जीवन की कला का एक ही सूत्र है। दो विरोधों के बीच में अविरोध। दो तनावों के बीच में तनाव मुक्ति। दो अतियों के बीच संतुलन।"

साध लेना बिल्कुल आसान है। तारों को ढीला छोड़ देने में कोई कलाकार होने की जरूरत नहीं है। और तारों को कस देना कोई भी मूर्ख कर सकता है। लेकिन तारों को उस बीच में लाना हो तो अति कठिन हो जाता है। व्यक्ति का शाँत हो जाना भी बहुत कठिन नहीं है। अगर व्यक्ति बाहर से आँख बंद कर ले, समाज से तो तत्क्षण शाँत हो सकता है। वे जो जंगल में भाग गये लोग हैं वे इसी तरह के लोग हैं जिन्होंने समाज से आँख बंद कर ली और शाँत हो गये। **समाज से आंख बंदकर शांत हो जाना, मरने की शांति है।** आदमी मर जाता है और शाँत हो जाता है। एक आदमी शराब पी

लेता है और शाँत हो जाता है। एक आदमी बेहोश हो जाता है, दुनिया का उसे पता नहीं है। सब ठीक है और शाँत हो गया। हवायें न चलती हों तो झील को शाँत होने में कोई कठिनाई है ? तूफान न आते हों, बादल न गरजते हों, तो झील को शाँत हो जाने में कोई कठिनाई है ? और हवायें न आती हों, आँधियाँ न आती हों, बादल न गरजते हों झील की छाती पर, और झील अशांत होना चाहे तो कैसे अशाँत हो सकती है ? अगर तूफान न आतें हों तो झील का शाँत होना जरा भी कठिन नहीं है, अशाँत होना हो मुश्किल हो जायगा। लेकिन झील पर तूफान आते हों, बादल गरजते हों और झील शाँत हो सके तब जरा कला की बात है, तब जरा साधना की बात है। तब जरा जीवन के सूत्रों को समझने की बात है। समाज से आँख बंद कर शाँत हो जाने में बहुत कठिनाई नहीं है। हजारों लोग समाज से आँखें बंदकर शाँत होते रहे हैं लेकिन वह शाँति मुर्दा है जो आँख बंद करके उपलब्ध होती है। पूर्व के मुल्कों ने इस तरह की शाँति खोजी, इसलिए पूर्व के समाज धीरे धीरे मरते चले गये, सड़ गये और समाप्त हो गये। भारत पूर्व के मुल्कों का अग्रणी मुल्क है। भारत के लोगों ने इस तरह की शाँति खोजी, इसलिए भारत दीन हुआ, दरिद्र हुआ, गुलाम हुआ, और आज भी किसी बेहतर हालत में नहीं है। और कल भी नहीं हो सकेगा। अगर पुरानी आदत से छुटकारा पाने की कोशिश नहीं करते। आदमी का शाँत हो जाना बहुत कठिन नहीं है। भाग जाओ जिन्दगी से और शाँत हो जाओ। युद्ध के मैदान में लड़ते हुए शाँत रहने में अर्थ है। पीठ दिखाकर भाग जाने में, अशाँत हो जाने में कोई अर्थ नहीं है।

मैंने सुना है - एक मुसलमान खलीफा था—उमर। ७ वर्षों से एक दुश्मन के साथ लड़ाई चलती रही। ७ वर्षों से उमर लड़ रहा था, एक दुश्मन से। बहुत भयंकर हो गया था, यह संघर्ष। किसी के जीतने की कोई उम्मीद नहीं मालूम पड़ती थी। ऐसा नहीं लगता था कि कोई निर्णायक फैसला हो सकेगा। लेकिन ७ वें वर्ष में निर्णायक फैसला होने के करीब आ गया। हाथ में आ गया वह क्षण कि निर्णय हो सकता था। उमर ने दुश्मन को गिरा लिया युद्ध के मैदान में और उसकी छाती पर सवार हो गया। कंधे में बंधे हुए भाले को निकालकर दुश्मन की छाती पर भोंकने को है, कि नीचे पड़े दुश्मन ने उमर के मुंह पर थूक दिया। मरता भी तो कुछ कर सकता है आखिरी अपमान तो वह कर ही सकता था, थूक सकता था। उमर एक क्षण रुक गया और अपने भाले को वापिस रख लिया और रूमाल से मुंह पोंछ लिया। और नीचे पड़े दुश्मन से कहा - दोस्त अब लड़ाई कल सुबह फिर शुरू होगी। लेकिन नीचे पड़ा हुआ दुश्मन कहने लगा - पागल हो गये हो। इस मौके की तालाश में तुम ७ वर्षों से थे, आज तुम्हारे पैरों के नीचे पड़ा हूं। तुम छाती पर सवार हो, निःहत्था हूं। मेरा हथियार छूट गया है। मेरा घोड़ा मर गया है। इस मौके को मत छोड़ो। ये मौका दुबारा आयेगा, इसकी कोई उम्मीद न करो। भाले को वापिस उठा लो और छाती में भोंक दो। बात क्या है ? भाला उठा लिया था और रोक क्यों लिया ? तुम तो मारने के करीब थे। फिर भाला वापिस क्यों कर लिया ? उमर ने कहा - मेरी जिन्दगी में हमेशा एक ख्याल रहा - लड़ूंगा जरूर, लेकिन अशाँत होकर नहीं। तुमने थूका और मैं अशाँत हो गया। ७ वर्षों से लड़ाई शाँति से चल रही थी। मैं शाँत था। बाहर लड़ाई थी। लड़ाई बाहर की थी, भीतर की नहीं थी। एक क्षण को तुम्हारे प्रति मेरे मन में क्रोध न था। लड़ना उसूल का था, लड़ना एक सिद्धाँत का था, लड़ाई एक तल पर थी, लेकिन मैं लड़ाई के बाहर था। लड़ रहा था ७ वर्षों से युद्ध के मैदान में लेकिन मैं युद्ध के मैदान में होते हुए भी युद्ध के बाहर था। लेकिन मुंह पर थूककर तुमने युद्ध के बीच खींच लिया है। मेरी भीतर की शाँति डवांडोल हो गई, मेरा निर्णय चूक गया। नहीं, अब मैं छुरा उठा नहीं सकता, भाला नहीं उठा सकता। कल सुबह मैं शाँत होकर आ सकूंगा। लेकिन फिर दूसरे दिन लड़ाई नहीं हुई। क्योंकि ऐसे आदमी से लड़ना मुश्किल है। दुश्मन उमर के पैरों पर गिर पड़ा। मुझको भी ऐसा लगता था तुम्हारी आँखों में देखकर कि तुम लड़ते तो जरूर हो लेकिन तुम्हारी आँखें कहती हैं कि

कोई लड़ाई नहीं है, हाँ, परीक्षा के लिए थूक कर देखा था कि आज तुम्हारी आँखें बदलती हैं या नहीं। और तुम्हारे भाले पर रुक जाना याद दिला गया कि ऐसे लोग भी हो सकते हैं जो युद्ध के मैदान में हों और युद्ध में न हों ! यह तो भागकर अशाँत हो जाना आसान है। लेकिन ये प्रक्रिया Impotent है, नपुन्सक है। जीवन से भागकर शांत हो जाना बहुत आसान है। क्योंकि जीवन में मौके हैं जब आदमी अशाँत होता है। जिन्दगी अवसर है, जहाँ तूफान चलते हैं और आंधियाँ चलती हैं। लेकिन हम भागे हुए लोगों की पूजा बहुत कर चुके। Escapist पलायनवादियों की बहुत पूजा हो चुकी। हद्द अंधपन हुआ दुनिया में। जो भाग गये, पूजा उन्होंने की जो लड़ रहे थे। जो लड़ रदे थे, उन्होंने चरण छुये उनके जो भाग गये थे। धर्म के नाम पर भगोड़ों की पूजा हुई और जो युद्ध के मैदान पर खड़े थे, अपमानित रहे। भारत में ऐसा ही हुआ। हमने यहाँ शाँति को भागने का पर्याय बना लिया। इसलिए हमारी जिन्दगी धीरे धीरे सब युद्धों के मैदान से भागती चली गई। समाज, राजनीति, इतिहास सबकी कथा हमसे कहेगी, हम सब तरह से भाग गये, हार गये, टूट गये। इस भाग जाने, हार जाने, टूट जाने के पीछे एक बुनियादी भूल थी और वह भूल यह थी कि आदमी शाँत हो सकता है जिन्दगी से भागकर। जिन्दगी से भागकर आदमी मर सकता है, शाँत नहीं हो सकता। मरा हुआ आदमी भी शाँत होता है लेकिन मरे हुए को कोई शाँत नहीं कहता। मरा हुआ आदमी बीमार नहीं पड़ता ये तो आपको पता होगा, लेकिन मरे हुए आदमी को कोई स्वस्थ नहीं कहता। भागा हुआ आदमी शाँत होता है, लेकिन वह शाँति धोखा है, वह शाँति Negative है, नकारात्मक है। अशाँति के अवसर का न होना, शाँति नहीं है। **अशाँति के अवसर का पूरी तरह होना और** वहां शाँत होना ही शांति है।

पहली बात यह कहना चाहता हूं की अब तक यह बात जाहिर रही है सारी दुनिया में कि शांत होना हो तो भाग जाओ। यह बात गलत थी। यह बुनियादी रूप से गलत थी। यह तारों को बिलकुल ढीला छोड़ देना है। फिर संगीत पैदा नहीं होता। वीणा ही व्यर्थ हो जाती है। **दूसरी बात** यह थी कि दुनिया में खड़े रहना है तो अशांत रहना पड़ेगा। वह बात भी इतनी ही गलत थी। जिन्दगी को अगर बदलना है, अच्छा बनाना है तो अशांत रहना पड़ेगा। जिन्दगी को अगर नया करना है, सुन्दर करना है, सुखद करना है, समृद्ध करना है, तो अशांत रहना पड़ेगा। वह बात भी गलत है, पश्चिम ने वही बात चुन ली। उन्होंने व्यक्ति की शांति की कोई फिकर नहीं की। उन्होंने समाज की क्रांति की निरंतर फिकर की। इसलिए समाज विकसित होता चला गया, शक्तिशाली होता चला गया, समृद्धशाली होता चला गया। लेकिन व्यक्ति ? व्यक्ति बिलकुल खो गया। पश्चिम में व्यक्ति समाप्त हो गया, पूर्व में समाज समाप्त हो गया। पूर्व की बाहर की दुनिया दीन हीन हो गई, पश्चिम की भीतर की दुनिया न कुछ हो गई। पश्चिम में भीतर का आदमी बचा ही नहीं। पूर्व में कुछ भी नहीं है सिवाय गरीबी के, बीमारी के, दरिद्रता के, दुख के, हीनता के, अकाल के, बाहर कुछ भी नहीं है। समाज को तो निरंतर क्रांति चाहिए। **क्रांति का अर्थ है**—परिवर्तन, क्रान्ति का अर्थ है—गति, क्रांति का अर्थ है—शांति की खोज, क्रांति का अर्थ है—समृद्ध होने की चेष्टा, क्रांति का अर्थ है—शक्ति की आराधना, क्रांति का अर्थ है—जीवन की प्यास, जीवन का आनंद। समाज को निरंतर क्रांति चाहिए। अगर व्यक्ति शांत हो जाय, तो समाज की क्रांति रुक जाती है। पूर्व में कोई क्रांति नहीं हुई। अगर हम ५००० वर्षों का इतिहास उठाकर देखें तो हम किसी क्रांति से कभी नहीं गुजरे। हमने कभी कुछ नहीं बदला। और जो बदलाहट हो गई है, वह मजबूरी में हो गई है। दूसरों ने बदल दिया है। हमने रोते रोते बदलाहट की है। हम अब भी बैलगाड़ी लिये बैठे होते, अब भी हमने चर्खा काता होता। यह तो दूसरे लोग आ आकर हमको परेशान कर दिये। हमको बदलना पड़ा। हम कभी नहीं बदले ! हम बाहर की जिन्दगी में कभी बदलना ही नहीं चाहते। हम तो कहते हैं, बाहर तो सब सपना है, सब झूठ है, सब माया है। गरीब रहो तो भी माया है, बीमार रहो तो भी माया है, स्वस्थ रहो तो भी माया है, तो फिर क्या जरूरत है कि हम बाहर की जिन्दगी को

बदलने की कोशिश करें। झोपड़े को महल बनायें। गरीब को स्वस्थ करें। मरते हुए बच्चों को बुढ़ापे तक जिलाने की कोशिश करें। क्या फायदा है? क्या अर्थ है बाहर? शांति भीतर है। देश के सारे साधु सन्यासी और शास्त्र कहते हैं—शांति भीतर है, बाहर से आंख मोड़ लो। पश्चिम में वे उल्टी बात कहते हैं। वे कहते हैं—शक्ति बाहर है, भीतर की फिकर छोड़ो, शक्ति की आराधना करो। समृद्धि बाहर है। इसलिए पूर्व में धर्म विकसित हुआ और पश्चिम में विज्ञान। **विज्ञान बाहर के जीवन पर काबू पाने की चेष्टा है, धर्म भीतर के जीवन पर काबू पाने की चेष्टा है।** लेकिन मैं ये कहना चाहता हूं कि अगर बाहर की जिन्दगी में ही कोई रह जाय, शक्ति तो आती है, लेकिन जिनके हाथों में शक्ति आती है, वे खुद खो जाते हैं। धन आ जाता है और मालिक खो जाता है।

स्वामीराम टोकियो गये थे। टोकियो से गुजरते थे। एक बड़े भवन को आग लग गई थी। उस भवन के

"विज्ञान बाहर के जीवन पर काबू पाने की चेष्टा है, धर्म भीतर के जीवन पर काबू पाने की चेष्टा है।"

बाहर हजारों लोग इकट्ठे थे। रामतीर्थ भी खड़े होकर देखने लगे। भवन का मालिक खड़ा था। उसकी आँखें पथरा गई थीं। वह देख रहा था लेकिन कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था। जिन्दगी भर जो बनाया था, वह जल रहा था। नौकर चाकर आसपास के पड़ोस के मित्र सामान ले लेकर बाहर आ रहे थे। तिजोड़ियां निकाली जा रहीं थी, हीरे जवाहरात निकाले जा रहे थे। धन निकाला जा रहा था। कीमती वस्त्र निकाले जा रहे थे। अमूल्य चीजें थी उस धनपति के पास। वे सब बाहर निकाली जा रही थीं। फिर आखिरी बार घर के बाहर आये हुए लोगों ने मालिक से कहा कि एक बार और भीतर जाया जा सकता है फिर लपटें भवन को पूरी तरह पकड़ लेंगी। कोई जरूरी चीजें रह गई हों, आप कहें तो हम भीतर से ले आयें। उस आदमी ने कहा—मुझे कुछ भी समझ में नहीं पड़ रहा है कि क्या हो रहा है, क्या आ गया है, क्या छूट गया है? मुझे कुछ भी पता नहीं है। तुम ऐसे ही जाकर देख लो, जो दिखाई पड़े, ले आओ। जिसका सब जल रहा हो उसे क्या दिखाई पड़ सकता है? जिसका सब जल रहा हो, वह क्या हिसाब रख सकता है कि क्या छूट गया, क्या बच गया? ये सब फुरसत की बातें हैं, आराम की बातें हैं। सब जलता हो तो ये सब हिसाब-किताब काम नहीं पड़ते। वे लोग भीतर वापिस गये और भीतर से छाती पीटते बाहर आये। हर बार तो वे खुशी से आये थे कि वे कुछ लेके आये हैं। इस बार भी कुछ लेकर आये थे लेकिन रोते हुए। सारी भीड़ इकट्ठी हो गई कि रोते क्यों हो? उन्होंने कहा—बड़ी भूल हो गई। हमारे मालिक का एक ही बेटा था। उस बेटे को हम बचाना भूल गये। वह भीतर सो रहा था। वह जल गया, चल बसा। हम सामान बचाते रहे। सामान तो सब बच गया, लेकिन मकान का मालिक, होने वाला मालिक जल गया। स्वामीराम ने उस दिन अपनी डायरी में लिखा—'यही तो सारी दुनिया में होता है। आदमी मर गया है और सामान बच गया है। आदमी खो गया है।' असली मालिक खो गया और सामान बच गया। सामान बहुत है, बहुत ढेर है। अम्बार है उसका, लेकिन सामान में खोजने जाओ तो सामान के मालिक का कहीं कोई पता नहीं मिलता। मालिक कहां है? बैंक बैलेन्स है बहुत लेकिन किसका है? उसका कोई पता नही चलता कि वह कौन है भीतर! जिसकी यह शक्ति है, वह कहां है? उसका पता शांति में ही चलता है। उसका पता अशांति में कभी नहीं चलता। पश्चिम ने खो दिया व्यक्ति को, आदमी को और पूर्व ने खो दिया समाज को। क्या दोनों बातों के बीच कोई जोड़, कोई सम्मिलन, कोई संतुलन नहीं हो सकता? क्या यही होगा कि कील अकेली ठहरी रहेगी तो उस चाक के बने रहने का मतलब क्या है? प्रयोजन क्या है? नहीं, जिन्दगी एक जोड़ है। दो विरोधों के बीच एक संतुलन। दो विरोधों के बीच एक अविरोध। दो उल्टी चीजों के बीच एक तीसरी खोज। और इसलिए मैं कहता हूं—व्यक्ति को चाहिए शांति और समाज को चाहिए सतत् क्रांति।

अमृत के दानी : विष के घूंट

संकलन : श्री रतन प्रकाश

[अमृत के दानी सदा से विष के घूंट पीते आये हैं। आचार्य श्री के विरुद्ध अहमदाबाद कोर्ट में दायर मुकदमा लगता है इसी प्रक्रिया का सिलसिला है। वादी ने आरोप में कहा है कि उनके विचारों से हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचती है।

किसी मित्र ने एक जनसभा में इस मुकदमे पर आचार्य श्री की प्रतिक्रिया जाननी चाही। उन्होंने वहां जो कहा, उसे हम यहां प्रस्तुत कर रहे हैं।]

मेरी बातों के जबाब देने का अगर कोई उपाय न हो तो फिर इस तरह की तरकीबें खोजे बिना कोई रास्ता नहीं रह जाता है। मैं सीधी बात करना चाहता हूं, और उसका किसी के पास कोई उत्तर नहीं है तो अब कानून से उलझने का रास्ता खोजा गया है। लेकिन मैं सोचता था कि यह बहुत दिन पहले हो जाना चाहिए था। बहुत देर से यह मुकदमा चला। मैं तो इतनी बातें कह रहा हूं कि हर बात पर मुकदमा चल सकता है, मुकदमा चलना चाहिए। मैं तो पसंद करूंगा कि मुझ पर सौ, पचास, मुकदमे चलें ताकि उन मुकदमों के माध्यम से मैं सारी बात कह सकूं। और यह कह सकूं कि कानून भी अंततः स्वार्थ और शोषण की सहायता करता है या उसे तोड़ता है ? यह सच में न्याय है, या यह भी अन्याय है ?

यह भी हो सकता है कि मुकदमा भी चलायें और यह भी हो सकता है कि मुझे बंद भी करें। यह सब हो सकता है, इसमें कोई कठिनाई नहीं है। यह बिलकुल स्वाभाविक भी है, क्योंकि इस देश ने, सच्ची बात कहनी, सच्ची बात सुननी, उस पर विचार करना इसकी क्षमता, हिम्मत, साहस सब खो दिया है। हम तो मुंह बंद कर देना चाहते हैं किसी आदमी का। मुझे कितने ही पत्र आते हैं—पत्र आते हैं कि हम गोली मार देंगे यदि आपने यह बात दुबारा कही तो। लेकिन यह गोली मारने वाले लोग इतनी कमजोर हिम्मत के लोग होते हैं कि पत्र में दस्तखत भी नहीं करते ! इतनी कमजोर हिम्मत के लोग कहीं गोलियां मारते हैं ? लेकिन हां, यह गोलियां मारने की बात करने वाले एक बात स्वीकार कर लेते हैं कि अब उनके पास कोई तर्क नहीं है, कोई दलील नहीं है। अब मेरी बात तो खुली हुई है। अभी मैं अहमदाबाद से लौटा हूं, ग्यारह तारीख तक मैं वहां था, तब तक बीस हजार लोग मुझे सुन रहे थे। उनमें से एक आदमी ने भी खड़े होकर नहीं कहा कि मैं आपका उत्तर देना चाहता हूं। जो देना चाहे वह बराबर उत्तर दे—लोगों की सभा बुलाये, पत्रों में लिखे, मेरे खिलाफ चर्चा करे। मैं तो खुद सीधी चर्चा करने को राजी हूं। अभी पटना में पुरी के शंकराचार्य ने चैलेन्ज किया कि मुझसे विवाद करना चाहते हैं। मैंने चैलेन्ज स्वीकार कर लिया, लेकिन दूसरे दिन फिर वह सभा में आये ही नहीं। अब यह बड़ी मुश्किल की बातें हैं ! मैं दो दिन गया, कि वह आ जाएं तो सीधी बात हो सके। लेकिन संयोजकों ने कहा कि वह तो नहीं आयेंगे और आपको भी हम नहीं बोलने देंगे।

सीधी बात करने की क्षमता ही हमने खो दी है। हो सकता है जो मैं कहता हूं वह गलत हो। कोई मैंने

ठेका नहीं ले लिया है सच का। लेकिन सामने बात करो अगर गलत होगा तो मैं स्वीकार कर लूंगा। या अगर आप गलत हों तो स्वीकार करने की क्षमता रखनी चाहिए। लेकिन नहीं, दूसरी ही तरकीबें निकाली जाती हैं कि हमने किसी का दिल दुखा दिया है। यह तो ठीक ही है—अगर मैं शूद्रों को मिटाने की, अस्पर्शता को मिटाने की बात करूंगा तो ब्राह्मणों का दिल दुखेगा। और अगर स्त्रियों के बराबर होने की बात करूंगा तो उन पुरुषों का दिल दुखेगा जो स्त्रियों के मालिक और तानाशाह बने हुए हैं। स्वाभाविक है कि दिल दुखेगा अगर मैं यह कहूंगा कि पंडे, पुरोहित मनुष्य को धार्मिक नहीं होने दे रहे हैं, तो पंडित, पुरोहितों का दिल दुखेगा। जिनकी दूकानें हैं उनके दिल दुखेंगे। लेकिन इस दिल के दुखने के कारण सत्य को कहना बंद नहीं किया जा सकता। सत्य तो कहना ही पड़ेगा, जिनके दिल दुखते हैं, उन्हें जरूर अपने दिल मजबूत कर लेना चाहिए। और अगर दिल मजबूत न करते हों तो अपने आंख कान बंद कर लेना चाहिए ताकि ऐसी बातें भीतर न जायें जो दिल को दुखाती हों। वैसे आजकल नकली, प्लास्टिक के दिल भी लगने लगे हैं जिनमें दुख दर्द होता ही नहीं। उन्हें नकली दिया लगवा लेना चाहिए।

जब भी समाज की व्यवस्था में क्रांति लाने की बात होगी तो कुछ लोगों के दिल दुखेंगे। कोई मेरी इच्छा नहीं है कि किसी का दिल दुखे। लेकिन लोग ऐसी गलत व्यवस्था को पकड़े बैठे हैं तो दिल का दुखना जरूरी है, रूढ़ मान्यताओं को ठेस पहुंचना जरूरी है। पीछे हम जानते हैं कि राजाओं के राज्य छीने गये तो उनके दिल को, उनकी भावनाओं को ठेस लगी। और अब उनके प्रीवीपर्स छीनने की बात की जाती है तो भी उनका दिल दुखता है। लेकिन दुखने दें उनका दिल—प्रीवीपर्स की वजह से बहुत से लोगों के दिल दुख रहे हैं। सवाल यह है कि कितने लोगों के दिल दुखाने हैं? बहुत लोगों के या थोड़े लोगों के? जमींदारी गई तो जमींदारों के दिल दुखे और कल को अगर दुकानें और बैंक, सरकार की होंगी, कारखाने देश के होंगे और अगर सारी संपत्ति सबकी हो जायेगी तो टाटा, बिड़ला और डालमियाँ के दिल दुखेंगे। लेकिन इस दिल दुखने के लिए अदालतें बाधा नहीं डाल सकतीं।

जिस दिन यह कहा जायेगा कि संपत्ति सब में समान रूप से बंट जाना चाहिए क्योंकि सम्पत्ति एक के पास होना खतरनाक है और जब तक सम्पत्ति थोड़े से लोगों के पास है तब तक देश से चोरी, बेईमानी और बदमाशी नहीं मिट सकती है—तो धन इकट्ठा करने वाले लोग, ये पुण्यात्मा, ये तथाकथित भगवान को प्रेम करने वाले धार्मिक लोग, ये मंदिर बनवाने वाले लोग, पंडे, पुजारी, साधू, सन्यासियों को पालने वाले लोग, और इनकी सारी व्यवस्था को चोट पहुंचेगी।

तो उन मित्र को मुझे कहना है कि मुकदमे का मुझ पर यह असर हुआ कि मुझे लगा कि बड़ी देर हो गई, बहुत पहले यह मुकदमा चलना चाहिए था। और इस गांव के लोग बड़े नासमझ हैं कि इन्होंने अभी तक शुरू नहीं किया—अहमदाबाद के लोगों ने शुरू कर दिया। दूसरे गांव के लोग भी नासमझ हैं। सब गांवों में मुकदमे चलने चाहिए। और इन मुकदमों से जनता तक साफ होना चाहिए कि बात क्या है। कोई हर्जा नहीं है कि दस पचास लोग जेल में सड़ें। मेरे जैसे कुछ लोग मार डाले जायें तो भी कोई हर्जा नहीं है। लेकिन अगर इस देश में असत्य की जो दीवालें आज तक खड़ी हैं वो गिर जायें तो मेरे जैसे सौ, पचास लोगों के मरने जीने या न जीने से कोई फर्क नहीं पड़ता। असली सवाल तो ये है कि इस देश के अधिकतम लोगों को शांति, अधिकतम लोगों के कल्याण के लिए हम कोई विचार करें, सोचें, कोई कदम उठायें।

मेरी बातें गलत हो सकती हैं, लेकिन गलत बातों को गलत सिद्ध किया जाना चाहिए। गालियां देने से—मुकदमे चलाने से कुछ नहीं होता। लेकिन शायद कोई प्रतिक्रिया है जिसमें जीसस को शूली पर लटकाना पड़ता है, गांधी को गोली मारना पड़ती है, सुकरात को जहर पिलाना पड़ता है। जब भी समाज के बहुत पुराने ढांचों

पुराने अंधविश्वासों, समाज की रूढ़ियों, समाज के पागलपनों पर चोट की जाती है तो समाज बौखला उठता है, क्रोध से भर जाता है। केवल एक ही आशा काम करती है कि समाज में चाहे कुछ लोग पागल हो जाते हों और क्रोध से भर जाते हों लेकिन समाज का जो बुद्धिमान, विचारशील तबका है, नई हवा, नई रोशनी, नई आँखों वाले लोग हैं वे तो समझेंगे–वे तो विचार करेंगे–वे तो हिम्मत जुटायेंगे और सत्य के लिये साथी भी बन सकते हैं। उन लोगों पर आशा रखकर चलने के सिवाय और कोई मार्ग नहीं है। मैं तो अपनी बात कहता रहूंगा—गाँव गाँव—गली गली –कूचे कूचे एक एक व्यक्ति से। यह जानते हुए भी कि जिससे मैं कह रहा हूं, हो सकता है वही मुझे पत्थर मारने को राजी हो जाये। क्योंकि उसे भी पता नहीं कि उसका हित क्या है, अहित क्या है। हो सकता है वही क्रोध से भर जाये। हमने सोचने की आदत ही छोड़ दी है, बल्कि कठिनाई तो यह है कि जो निरन्तर हमारा शोषण करते रहे हैं हम फिर फिर उन्हीं के पास पहुंच जाते हैं। फिर उन्हीं से पूछने लगते हैं कि रास्ता क्या है? गुरुदेव रास्ता बतायें? और मजा यह है कि वे ही गुरुदेव भटकाते रहे हैं।

भारतीय समाज को अपनी सारी आधारशिलाओं पर पुनर्विचार करना होगा। जिन भूलों को हमने कल तक दोहराया है अब उन्हीं भूलों के मालिकों के पास पूछने जाने को कोई भी जरूरत नहीं है। बल्कि वहां नहीं जाना है। जिन शास्त्रों ने सिखाई है वर्ण की व्यवस्था उन शास्त्रों से अब पूछने नहीं जाना है। अब मनु महाराज से पूछने की कोई जरूरत नहीं है। जिन धर्म गुरुओं ने सिखाया है कि गरीब अपने पापों के कारण गरीब है, उनसे अब पूछने नहीं जाना है। उन्होंने ही इस मुल्क को गरीब बनाये रखने की साजिस की है। जो लोग यह सिखाते रहे हैं कि स्त्री नीची है, पुरुष ऊंचा है, शूद्र नीचा है ब्राह्मण ऊंचा है—उनसे पूछना अब बंद कर देना है। अब हमें स्वयं फिर से सोचना है कि हम इस पुराने ढाँचे को स्वीकार करें या एक नया समाज बनायें? एक नया समाज निश्चित ही बन सकता है। भारत में सारी बातें तैयार हो गई हैं सिर्फ कुछ हिम्मतवर लोगों की जरूरत है कि वे धक्का देकर पुराने मकान को गिरादें और नये मकान का नक्शा तैयार करें। थोड़े से हिम्मतवर लोग ही इस काम को कर सकेंगे। कोई जरूरत नहीं है कि पूरा मुल्क ही इतनी हिम्मत जुटाये। थोड़े से लोग भी हिम्मत जुटायें तो यह पुराना मकान गिर सकता है। वैसे तो यह गिर ही चुका है, हम ही इसे सम्भाले हुए हैं। इसे हम सिर्फ सम्भालना बंद कर दें तो यह गिर जायेगा। और एक बार यह पुराना मकान गिर जाये तो नया मकान बनाना बहुत कठिन नहीं है क्योंकि आदमी बिना मकान के नहीं रह सकता है। पुराना गिरे तो हम नया बना ही लेंगे। फिर नया हमें बनाना ही पड़ेगा, सोचना ही पड़ेगा। लेकिन पुराना बना रहे तो हम सोचते हैं कि ठीक है, आज और गुजार लें, कल का क्या भरोसा। फिर आज निकल जाता है तो सोचते हैं कि कल भी निकल जायेगा। और इस तरह समय निकलता जाता है, बाप का भी, बेटा का भी, पीढ़ियां गुजर जाती हैं और पुराना मकान छाती पर खड़ा रहता है। पुराना मकान छाती पर खड़ा है और अब रहने योग्य भी नहीं रह गया है। वह सारे जीवन को नष्ट कर रहा है।

इसलिए थोड़ी सी बातें मैंने कहीं ताकि आप सोचें कि पुराने ढाँचे में जिए जाना उचित है या कोई नया समाज बनाना है? पुराने राष्ट्र की खंड खंड धारणाओं को पकड़े रहना उचित है कि एक विशाल राष्ट्र की कल्पना करनी है? क्या एक एक जाति, एक एक उप जाति, एक एक धर्म के अलग अलग घरबूले बनाके जीना ठीक है या एक विराट समाज, एक भाई चारा निर्मित करना है? क्या यह उचित है कि भारत एक टुकड़े की तरह जिये या सारी मनुष्यता से एक हो जाये? क्या यह अच्छा न होगा कि सारी सीमायें विलीन हो जायें और सारी मनुष्यता एक हो?

●

पत्र प्रेरणा

'विचार' और 'सन्यास' के संदर्भ में जिज्ञासुओं को लिखे गये दो अनूठे पत्र प्रकाशित किये जा रहे हैं। पहला पत्र मनमाड़ के श्री प्रेमशंकर पांडे और दूसरा पत्र बम्बई की सुश्री पुष्पा बहिन को लिखा गया है। आपके पास भी आचार्य श्री के ऐसे ही मार्गदर्शी पत्र पहुंचते होंगे। पत्रों की प्रतिलिपी हमें भेजें ताकि उन्हें प्रकाशित कर अन्य पाठकों तक सन्देश पहुंचाया जा सके।

वि चा र

विचार ही मनुष्य की शक्ति है। और वही विश्वास ने उससे छीन ली है। मनुष्य इसीलिए दीन हीन और निर्वीय हो गया है।

खूब विचार करो। अथक विचार करो। और आश्चर्यों का आश्चर्य तो यह है कि विचारों की चरमसीमा पर ही निर्विचार दशा उपलब्ध होती है। वह विचार की पूर्णता है और इसलिए उस दशा में विचार भी व्यर्थ सिद्ध होता है।

उस शून्य में ही सत्य होता है।

स न्या स

मैं सन्यास के विरोध में नहीं हूं। लेकिन वस्त्र या बाह्य स्थिति परिवर्तन को नहीं वरन आमूल जीवन क्रांति को सन्यास कहता हूं। ऐसा सन्यास प्रभु की खोज बन सकता है।

जो वस्त्र बदलने या इसी तरह की गौण बातों को सन्यास मान लेते हैं वे ऐसा वास्तविक सन्यास से बचने के लिए ही करते हैं।

इसलिए सन्यासियों को सन्यास मिलना दुर्लभ हो जाता है।

राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बुनियादी बाधायें

संकलन : श्री बी० एल० नाग

'राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बुनियादी बाधायें'— इस सम्बंध में कुछ भी कहने के पहले मैं यह कहना पसंद करूंगा कि मैं स्वयं राष्ट्रीय भाव का विरोधी हूं। कोई भी सीमा, कितनी ही बड़ी क्यों न हो यदि मनुष्य को विभाजित करती है तो मनुष्य विरोधी है। राष्ट्र का भाव भी मनुष्यता के बीच दीवारें खड़ा करने वाला भाव है। मनुष्य जाति स्वयं राष्ट्र की भावना से निरन्तर ऊपर उठती चली गई है, लेकिन अभागा है हमारा देश कि अभी तक हम राष्ट्रीय भी नहीं हो सके हैं, अंतर्राष्ट्रीय होने का सपना देखना तो बहुत मुश्किल है। अन्तर्राष्ट्रीय होना ही सार्थक है वही उपादेय भी है। लेकिन जो राष्ट्रीय भी न हो सकते हों उनके अन्तर्राष्ट्रीय होने की बात भी नहीं सोची जा सकती है। मैं स्वयं मानता हूं कि वह वक्त निकट है जब कोई राष्ट्र पृथ्वी पर नहीं होगा, नहीं होने चाहिए। क्योंकि जहां भी मनुष्य विभाजित है वहीं संघर्ष है, वहीं कलह है। और जहां भी मनुष्य बंटता है वहीं युद्ध खड़े हो जाते हैं। फिर ६ अगस्त १९४५ के बाद मनुष्यता एक नये इतिहास में प्रवेश कर गई है। ६ अगस्त १९४५ हिरोशिमा में अणुबम गिरने का दिन है। जिस दिन हिरोशिमा में अणुबम गिरा—जो लोग जानते हैं, उन्हें पता है कि उसी दिन राष्ट्र की सीमायें व्यर्थ हो गईं। उसी दिन से राष्ट्रीयता का कोई अर्थ नहीं रहा। एक जमाना था कि एक बड़े किले की दीवार रक्षा करती थी, लेकिन जिस दिन हवाई जहाज निर्मित हुआ उसी दिन किले की दीवालें व्यर्थ हो गईं। अणुबम के बन जाने के बाद कोई राष्ट्र की सीमा किसी की रक्षा नहीं बनती। अणुबम के बाद सारी पृथ्वी किसी भी क्षण एक साथ समाप्त की जा सकती है। इसलिए मैं कहना चाहूंगा कि हिरोशिमा के बाद दुनिया एक नये ही इतिहास में प्रवेश कर गई। अणु-युग में राष्ट्र का कोई भी अर्थ नहीं है। सारी पृथ्वी जब एक साथ नष्ट हो सकती हो तो अलग अलग राष्ट्रों के होने का क्या अर्थ हो सकता है? जहां एक की मृत्यु सब की मृत्यु बन जाने वाली हो वहां एक का जीवन दूसरे से भिन्न कैसे हो सकता है? और अणुबम का जो विस्फोट है वह न मील के पत्थरों को मानता है न राष्ट्र की रेखाओं को मानता है। न नक्शों पर खींची गई राजनीति को स्वीकार करता है। आज हम जाने अनजाने अणुबम के कारण ही सारे लोग इकट्ठे हो गये हैं। सारी दुनिया एक सामूहिक आत्मघात के करीब है। हम सब एक साथ मर सकते हैं। और अगर हम एक साथ मर सकते हैं तो ये धारणायें छोड़ देनी होगीं कि हम अलग अलग जियेंगे। पूरी मनुष्यता एक साथ मरने के करीब पहुंच गई हो तो हमें इकट्ठे जीने का कोई महान् अभियान शुरू करना ही पड़ेगा। हिरोशिमा के बाद कोई राष्ट्र बच नहीं रहे हैं, लेकिन पुरानी आदत के कारण हम उन्हें जारी रखे हैं। हम उस सीमा रेखा के आगे निकल गये हैं जहां राष्ट्र समाप्त हो जाते हैं, लेकिन हजारों वर्षों की आदत शायद जल्दी नहीं छूटती। जैसे किसी साइकिल के चाक को हम चला दें और फिर चलाना बंद कर दें तो भी बहुत देर तक चाक चलता है पुराने मोमेन्टम के कारण। वैसे ही हिरोशिमा के बाद राष्ट्र का भाव चल रहा है पुरानी आदत के कारण।

एक और नई चीज हुई है जिसने राष्ट्रों को मिटा दिया है। यूरी गागरिन के नाम से हम परिचित हैं। जिस दिन पहली बार वह अन्तरिक्ष में प्रवेश हुआ, उसने जो शब्द कहे, अंतरिक्ष में प्रवेश के बाद उसने टेलीविजन

पर और रेडियो पर जो पहले शब्द भेजे वह बहुत हैरान करने वाले थे। रूस में भी बहुत हैरानी हुई। यूरी गागरिन ने ये कहा कि पृथ्वी से दूर होकर जो पहला ख्याल मुझे आया वो आया—"आह ! मेरी प्यारी पृथ्वी।" मुझे एकदम से ये ख्याल नहीं आया कि मेरा प्यारा रूस! अंतरिक्ष में प्रविष्ट होते ही देश विलीन हो गये राष्ट्र विलीन हो गये, पृथ्वी एक हो गई। अन्तरिक्ष से देखे जाने पर पृथ्वी एक है ही, यूरी गागरिन ने कहा 'मेरी प्यारी पृथ्वी' उसने बाद में कहा कि मुझे ख्याल ही नहीं आया कि मैं कहूं 'मेरा प्यारा रूस' क्योंकि उस दूरी से रूस नहीं था सिर्फ पृथ्वी थी, न चीन था न भारत था, न अमरीका था। अंतरिक्ष में प्रवेश ने भी राष्ट्रों को विलीन कर दिया है। इन दो घटनाओं ने राष्ट्रों की धारणा को ही आमूल रूप से तोड़ दिया है। लेकिन भारत अभागा देश है। राष्ट्र से हम ऊपर उठें यह तो बहुत दूर है, हम अभी राष्ट्र तक भी नहीं पहुंच सके हैं। हमारे सोचने के ढंग, छोटी छोटी जातियों, प्रांतो, भाषाओं वर्णों, वर्गों, इनसे ऊपर नहीं उठे हैं। हमारी आत्मा राष्ट्र की धारणा के निकट भी नहीं पहुंच पा रही है। हम तो अत्यंत छोटे छोटे खंडों, उपखंडों में विभाजित हैं। सोचने से ऐसा मालूम पड़ता है कि शायद हम समसामयिक (Contemporary) नहीं कहे जा सकते। हम जिस सदी में रह रहे हैं ठीक हमारे पास उसी सदी का मस्तिष्क नहीं है। कपड़े तो हमारे पास आधुनिक है, टाई भी है, जूते भी हैं लेकिन आत्मा हमारे पास बहुत पुरानी है, और कपड़ों से कोई कौम नई नहीं होती। कपड़ों के हिसाब से हम बीसवीं सदी में खड़े हो गये है; चित और मन की दृष्टि से हम कम से कम १५ वीं सदी में जी रहे हैं। राष्ट्र के निकट भी हम नहीं पहुंच पा रहे हैं। हम इतने खंडों में विभाजित हैं कि दो खंड भी कैसे साथ साथ जिऐं यही कठिन पड़ रहा है। जब सारी दुनिया सह-अस्तित्व का विचार करती हो, अमरीका और रूस जैसे विरोधी भी जब निकट रहने का विचार करते हों, और उस जगह पहुंच गये हों कि निकट रहना ही पड़े, वहां ब्राह्मण और शूद्र भी हमारे देश में साथ रहने की स्थिति में नहीं हैं। पुरी के शंकराचार्य जैसे लोग, आज भी इस देश को खंडों में बांटे रखने के पक्ष में दलील कर रहे हैं और लोग उनकी दलीलों को सुन रहे हैं। और ऐसे लोगों को आज भी जगतगुरु कहा जा रहा है, और ऐसे लोगों के चरण आज भी छुऐ जा रहे हैं। ब्राह्मण और शूद्र भी निकट नहीं हो सकता, हिन्दु और मुसलमान भी निकट नहीं हो सकता। जैन और हिन्दु भी निकट नहीं हैं। और ये जो बड़े बड़े विभाजन हैं फिर इनके भीतर छोटे छोटे विभाजन हैं। विभाजनों के विभाजन हैं। हमने इतने विभाजन कर लिए हैं जितने पृथ्वी पर किसी देश ने नहीं खोजे होंगे। और विभाजन भी साधारण नहीं है बड़े असाधारण हैं। एक विभाजन से दूसरे विभाजन में जाने के लिए हमने कोई उपाय नहीं छोड़ा है। एक शूद्र किसी भी मार्ग से शूद्र होने के बाहर नहीं हो सकता। कोई यात्रा नहीं है, कोई तरलता नहीं है। समाज में कोई गति नहीं है समाज ठोस और जड़ हिस्सों में बंट गया है। करीब करीब इन हिस्सों ने हमारी स्थिति ऐसी विक्षिप्त कर दी है जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है।

मैंने सुना है, हिन्दुस्तान और पाकिस्तान जब बंटे तो दोनों की सीमा पर एक पागलखाना था। उस पागलखाने के बंटने का भी सवाल आ गया। उन पागलों से कहा गया कि तुम रहोगे तो यहीं। लेकिन जो हिन्दुस्तान में जाना चाहे वह हिन्दुस्तान में जा सकता है और जो पाकिस्तान में जाना चाहे वह पाकिस्तान में जा सकता है। यह सुनकर वे पागल हंसने लगे, उन्होंने कहा यह कैसी पागलपन की बात कहते हैं कि रहना यहीं होगा तो फिर जाना कैसे हो सकता है ? अधिकारियों ने कहा—"ये गहरी बातें हैं तुम्हारी समझ में नहीं आ सकतीं तुम तो एक बात का निर्णय कर लो कि तुम्हें जाना कहाँ हैं ? "उन पागलों ने कहा 'हम यहीं भले हैं, हम कहीं भी नहीं जाना चाहते।" लेकिन कोई निर्णय तो करना जरूरी था। फिर उनसे पूछा गया कि तुम यही बता दो कि तुममें से जो मुसलमान हो वह पाकिस्तान में चला जाये और जो हिन्दु हो वह हिन्दुस्तान में चला जाये। उन पागलों ने कहा कि ये तो हमें कुछ भी पता

नहीं। यह तो बाहर के पागलों को ठीक से पता है कि वे कौन हैं—हिन्दु या मुसलमान ? हम भीतर के पागल तो सिर्फ पागल हैं, हमें और कुछ भी पता नहीं है। ज्यादा से ज्यादा हम इतना ही कह सकते हैं कि हम आदमी हैं। और आदमियों को जहां भी भेजना हो भेज दें। लेकिन अधिकारी मुश्किल में पड़े क्योंकि हिन्दु हिन्दुस्तान भेजे जा सकते थे, मुसलमान पाकिस्तान भेजे जा सकते थे लेकिन आदमी को कहाँ भेजो ? आदमी भेजने को तो कोई जगह ही नहीं है। हिन्दुस्तान में तो आदमी के लिए कोई जगह हो ही नहीं सकती। तो फिर सिवाय इसके कोई रास्ता न रहा कि आधा पागलखाना हिन्दुस्तान भेज दिया जाये आधा पागलखाना पाकिस्तान भेज दिया जाये। बीच से दीवाल खींच दी गई। आधे पागल हिन्दुस्तान में आ गये आधे पाकिस्तान में चले गये। बीच की दीवाल के पार अब भी वे पागल एक दूसरे की तरफ देखते हैं, दीवाल के ऊपर उठकर पूछते हैं कि बड़े आश्चर्य की बात है, हम वहीं के वहीं है सिर्फ बीच में दीवाल खिंच गई और तुम पाकिस्तानी हो गये और हम हिन्दुस्तानी हो गये। हम हैं वहीं के वहीं, लेकिन हम एक दूसरे के दुश्मन हो गये, यह पागलपन कुछ समझ में नहीं आता है। पागलों की यह समझ में नहीं आयेगा क्योंकि इस देश के बुद्धिमानों ने ऐसा पागलपन किया है कि पागलों की समझ में आना भी बहुत मुश्किल है। वह तो एक पागलखाने की बात है लेकिन इस मुल्क में हजारों पागलखाने हैं और हजार तरफ दीवाल बाँध के हमें पागलों को आधा-आधा बाँट देना पड़ा है। और हर पागलखाने के भीतर पागलखाना है फिर और छोटे पागलखाने हैं और इतने विभाजन हो गयेहैं कि ये देश अन्तर्राष्ट्रीय कैसे हो सकता है ? ये तो अभी राष्ट्रीय होने की स्थिति में भी नहीं पहुंचा है। क्या कारण है ? सारा जगत धीरे धीरे निकट पहुंच रहा है और हम आपस में ही निकट नहीं हो सकते। कुछ बुनियादी बाधायें हैं जो हम न समझें तो भारत में कितने ही उपाय किये जायें—नेता दिल्ली के मंच से कितना ही चिल्लायें, इस मुल्क को एक राष्ट्रभाव नहीं दिया जा सकता है। सच तो यह है कि जो नेता ये बात समझाते मालूम पड़ते हैं, भीतर से वे खुद ही छोटे छोटे खंडों की ताकत पर खड़े हैं। और जो नेता ये समझाते हैं कि सारे देश को एक हो जाना चाहिए, उनकी सारी चेष्टायें, उनकी ताकत का भी सारा आधार देश के खंड खंड पर निर्भर हैं। वे ऊपर से राष्ट्रीय एकता की बातें करते हैं और भीतर से राष्ट्र को खंडों में तोड़ते भी चले जाते हैं। शायद उन्हें भी ठीक से पता नहीं है कि ऐसा हो रहा है। हमारे बँटे होने के कारण इतने प्राचीन हो गये हैं कि करीब करीब अचेतन हो गये हैं। मैं उन्ही कुछ बुनियादी कारणों पर बात करना चाहता हूं जिनसे राष्ट्र एक नहीं हो पा रहा है।

पहली बात—इस देश में हजारों वर्षों से एक बात समझी जाती रही है कि जो भी महत्वपूर्ण है वह भीतर है और जो भी बाहर है वह गैरमहत्वपूर्ण है,

"समाज की धारणा तभी पैदा हो सकती है जब बाहर भी सार्थकता हो, बाहर के संबंधों में भी सत्य हो। बाहर के संबंधों में जीना भी धर्म की प्रक्रिया का हिस्सा हो।"

असार है, व्यर्थ है, माया है। सत्य भीतर है, ब्रह्म भीतर है, बाहर सब माया का जगत है। अगर ये बात किसी भी व्यक्तित्व में बहुत गहरी बैठ जावे कि भीतर सब कुछ सत्य है, सारभूत है और बाहर कुछ भी नहीं है तो वैसे देश में, वैसे लोगों में व्यक्ति तो पैदा होगा समाज पैदा नहीं होगा। समाज तो बाहर है और अगर बाहर सब असार है सब माया है तो समाज की धारणा का जन्म नहीं हो सकता। समाज की धारणा तभी पैदा हो सकती है जब बाहर भी सार्थकता हो, बाहर के संबंधों में भी सत्य हो। बाहर के संबंधों में जीना भी धर्म की प्रक्रिया का हिस्सा हो। लेकिन इस देश में हम कह रहे हैं कि बाहर सब माया है, सपना है, झूठा है, भीतर ही सब सच है। भीतर मेरा अलग है, आपका भीतर अलग है।

हमारा बाहर जुड़ा हुआ है भीतर हमारे सबके अलग अलग हैं। मेरे भीतर का आपके भीतर से कोई संबंध नहीं है अगर आप अपने भीतर जीते हैं, मैं अपने भीतर जीता हूं तो हम दोनों को जोड़ने वाला कोई सेतू नहीं हो सकता। बाहर मेरा भी वही है जो आपका है। अगर बाहर सत्य हो तो समाज निर्मित होता है, तो राष्ट्र निर्मित होता है, तो एकता बनती है, तो हम साथ मिलते हैं, तो हम संगठित होते हैं, तो हम निकट होते हैं, तो हमारे बीच कोई संबंध की अवधारणा होती है। और अगर बाहर असत्य है तो समाज निर्मित नहीं होगा। भारत में व्यक्ति तो निर्मित हो सका समाज निर्मित नहीं हो सका। इसलिए व्यक्ति तो भारत ने बड़े बड़े पैदा किये—बुद्ध किये, महावीर किये, राम किये, कृष्ण किये। बहुत बड़े व्यक्ति पैदा हुए लेकिन भारत में बहुत बड़ा समाज पैदा नहीं हो सका। समाज बहुत हीन रहा, व्यक्ति बड़े हुए। और कभी कभी ये हैरानी की बात मालूम पड़ती है कि जिस देश में इतने बड़े बड़े व्यक्ति पैदा हुए हों, उस देश में इतना छोटा समाज कैसे है ? इतना क्षुद्र, इतना ओछा समाज कैसे है जिसमें इतने बड़े लोग हुए ? लेकिन कारण साफ है भारत ने भीतर को जो अत्याधिक मूल्य दिया, भीतर को जो चरम मूल्य दिया और बाहर का सारा मूल्य खंडित कर दिया—उसका परिणाम यही होने को था। भारत में महापुरुष पैदा हो सकते हैं लेकिन महान समाज पैदा नहीं हो सकता। समाज तो निर्मित होता है बाहर के संबंधों से, समाज तो उन्हीं संबंधों से निर्धारित होता है जिन्हें हम माया कहते हैं। राष्ट्र भी, देश भी, बाहर के संबंधों की विस्तार श्रंखला का नाम है। इसलिए इस मुल्क में न समाज पैदा हुआ न राष्ट्र पैदा हुआ और न देश की कोई धारणा पैदा हुई। इसका ही परिणाम है कि दुनिया की सबसे पुरानी संस्कृति होते हुए भी सबसे दरिद्र हम हैं। क्योंकि धन तो बाहर है, दरिद्रता मिटानी हो तो बाहर कुछ करना होगा। भीतर कुछ भी करने से दरिद्रता नहीं मिट सकती है। और भीतर चाहे कोई बुद्ध हो जाए, चाहे महावीर हो जाये, बाहर की दरिद्रता पर इसका कोई परिणाम नहीं हो सकता। बाहर की दरिद्रता तो बाहर के धन की उत्पत्ति से ही मिटेगी। लेकिन जो देश बाहर को झूठ कहता हो, असत्य कहता हो, माया कहता हो वह बाहर का धन क्यों पैदा करेगा ? तो निर्धनता को भी हम बाहर का एक सपना मान कर झेलने को तैयार हो गये हैं। फिर गुलामी आई तो गुलामी भी बाहर है। राजनैतिक, आर्थिक सारी गुलामियां बाह्य हैं, भीतर तो कोई गुलामी प्रवेश नहीं करती। बाहर मेरे हाथों में जंजीर हों तो भी भीतर मैं स्वतंत्र रह सकता हूं। भारत ने स्वतंत्रता की एक धारणा विकसित की जो भीतर को स्वतंत्रता है, आंतरिक स्वतंत्रता (Inner freedome) है, इसलिए बाहर की गुलामी को भी हम सहने को राजी हो गये। देश बाहर है, धन बाहर है, समाज बाहर है, स्वतंत्रता बाहर है—जो बाहर है वह असार है, उसका कोई मूल्य नहीं है, वह एक सपने की भांति है और जब मृत्यु के बाद जागेंगे तो पायेगें सब झूठ हो गया है। झूठ के लिए कौन लड़े, कौन परेशान हो ? इसलिए एक हजार वर्ष तक चुपचाप हम गुलाम बने रहे। इतनी लम्बी गुलामी दुनिया में कोई कौम कभी झेलने को राजी नहीं हुई है। इतनी लम्बी किसी को भी गुलामी झेलना असम्भव है—लेकिन हमारे पास एक ऐसा तत्वदर्शन था, एक ऐसी फिलासफी थी कि उसके आधार पर इस गुलामी को भी झुठलाया जा सकता था। गरीबी, दीनता, दरिद्रता सब झुठलाई जा सकती है क्योंकि हम भीतर को मानने वाले लोग हैं, हम बाहर को मानते ही नहीं। हमने बाहर की तरफ आंख बंद कर ली है। जैसे कोई शुतर्मुर्ग के पीछे दुश्मन पड़ा हो तो वह रेत में मुंह गड़ाकर खड़ा हो जाये और कहे कि जो दिखाई नहीं पड़ता वह है ही नहीं। ऐसा ही हम बाहर की तरफ आंख बंद करके खड़े हो गये हैं और कह रहे हैं कि जो दिखाई नहीं पड़ता वह है ही नहीं। और जो नहीं है उसकी समस्या भी कहां होगी ? और जो समस्या ही नहीं है उसका समाधान कैसा ? इसलिये बाहर का हमारा सारा जीवन अस्तव्यस्त और अराजक हो गया। इसी वजह से इस देश में राष्ट्र की भावना विकसित नहीं हो सकी। हमने व्यक्ति की भावना पर इतना बल दिया है कि समूह की कोई धारणा इस देश में

विकसित नहीं हो सकी। यह मैं पहला कारण मानता हू और जब तक इस देश के मन में बाहर का भी सम्मान शुरू नहीं होता और जब तक हम बाहर के मूल्य को भी अंगीकार नहीं करते, और जब तक हम यह नहीं कहते कि सत्य भीतर भी है और बाहर भी, और जब तक हम यह नहीं कहते हैं कि जो भीतर है वही बाहर भी है, और जब तक हम यह नहीं कहते कि बाहर की तरफ आंख बंद करके कोई भी समाज न उन्नत हो सकता है, न समृद्ध हो सकता है, न वैज्ञानिक हो सकता है, तब तक हम इस देश में बाहर की उपेक्षा से जो जो कमियां और भूलें पैदा हुई हैं उनको भी पूरा करने में समर्थ नहीं हो सकते।

भारत में क्यों विज्ञान पैदा नहीं हुआ ? माया से विज्ञान पैदा नहीं होता। अगर बाहर सब झूठ है तो विज्ञान कैसा ? झूठ से कहीं विज्ञान पैदा हुआ है। झूठ में कहीं सत्य की खोज हो सकती है ? इसलिए भारत इतना बुद्धिमान होते हुए भी अवैज्ञानिक रह गया है। क्योंकि बाहर के सत्य को अगर हम स्वीकार करते तो उसे खोजते, उस सत्य को पकड़ते और उससे शक्तिवान बनते। भारत जो इतना नपुंसक, इतना कमजोर है वह विज्ञान के अभाव से है। माया के दर्शन ने भारत को इस बुरी तरह डुबाया है जितना और किसी चीज ने नहीं डुबाया। हम व्यक्ति—व्यक्ति रह गये हैं—एक एक आदमी अलग अलग द्वीप है, हमारा एक दूसरे से कोई जोड़ नहीं, कोई संबंध नहीं। हम सब अलग अलग हैं। जो जोड़ दिखाई पड़ता है वह भ्रम है और जो हम साथ दिखाई पड़ते हैं वह असत्य है, और जो साथ को सत्य मानता है वह मोह में पड़ा है, भ्रम में पड़ा है, अज्ञान में पड़ा है। अपना होना ही सत्य है सबके होने के बीच कोई सेतू नहीं कोई मार्ग नहीं, कोई द्वार नहीं। सब अपने अपने में बंद होकर जियें—अगर किसी मुल्क की ऐसी धारणा हो तो वहाँ समाज का, सबका भाव कैसे उदय हो सकता है ?

इसलिए पहला सूत्र मैं आपसे कहना चाहता हूं कि बाहर असार है इस बात ने, बाहर को व्यर्थ कर दिया और बाहर की जितनी समृद्धियां हो सकती थीं, संगठन हो सकते थे, समाज हो सकता था—वह सब असम्भव हो गया। एक दूसरी बात भी इससे ही जुड़ी हुई काम करती रही है और वह व्यक्ति की हमारी जो धारणा है उसके अनुसार हमने एक और कल्पना पकड़ रखी है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने ही कर्मों का फल भोगना पड़ता है। जो मैं भोगूंगा वह मेरे कर्म हैं। जो मैं हूं वह मेरे कर्मों का फल है। आप के कर्मों से मेरा कोई संबंध नहीं कोई प्रयोजन नहीं। मेरे कर्मों से आपका कोई संबंध नहीं प्रयोजन नहीं। जहां एक एक व्यक्ति को अपनी कर्म-यात्रा चलती हो वहां समूह की धारणा कैसे पैदा होगी ? जैनियों के एक बड़े मुनि हैं, उनका सम्प्रदाय मानता है कि अगर कोई आदमी सड़क के किनारे पड़ा हुआ प्यासा चिल्ला रहा हो—पानी दो, तो भी उसे पानी मत देना क्योंकि वह अपने कर्मों का फल भोग रहा है। उसने कभी ऐसे कर्म किये होंगे जिनकी वजह से वह प्यास का फल भोग रहा है। तो उसे पानी देना बड़ी खतरनाक बात है क्योंकि पानी देने से दो नुकसान होंगे—एक तो अपने कर्मफल से जिसे भोग कर वह उसके मुक्त हो जाता, वह भोग नहीं पायेगा, बंधन कायम रहेगा। उसे फिर किसी दिन प्यासा होकर चिल्लाना होगा। जब तक कि वह प्यास को पूरा न भोग ले वह छुटकारा नहीं पा सकता, उसका उस कर्मबंध से छुटकारा नहीं हो सकता। अतः उसे पानी देना दया का कृत्य नहीं है, अत्यंत क्रूरता का कृत्य है क्योंकि पानी देने से उसके कर्मफल की जो निर्जरा हो रही थी वह रुक जायेगी। दूसरा खतरा यह है कि उसे पानी देकर आप भी झंझट में पड़ रहे हो। अगर वह आदमी पानी पीकर बच जाये और फिर बुरे कर्म करे तो आप भी उनमें भागीदार होंगे। क्योंकि न आप पानी देते और न वह बुरा कर्म करने के लिए बच रहता। तो आप भी अपने हाथ से अपने लिये पाप का फल अर्जित कर रहे हैं।

कर्म की यह विशुद्ध फिलासफी—अगर कर्म के सिद्धान्त को पूरा विकसित किया जाये तो बनती है, और इस हिसाब से वे मुनि जो कहते हैं वह ठीक कहते हैं।

अगर किसी देश में इस तरह की विचार धारा रही हो तो उस देश में समाज कैसे पैदा होगा ? समाज के पैदा होने का अर्थ है कि मेरे कर्म और आपके कर्म सबके कर्म संयुक्त हैं। मैं अकेला भागीदार नहीं हूं अपने कर्मों का। एक छोटी से छोटी घटना भी सबके साथ संयुक्त घटना है।

मैंने सुना है—एक मस्जिद के नीचे से एक फकीर गुजर रहा था और मस्जिद का मुल्ला अजान देने के लिए ऊपर चढ़ा था। वह मीनार से गिर पड़ा। उस फकीर की गर्दन पर गिरा। वह मुल्ला तो बच गया लेकिन फकीर की गर्दन टूट गई। फिर फकीर अस्पताल में भरती हुआ। उसके मित्र उसे देखने गये और उस फकीर से पूछने लगे कि आपने इस घटना से कुछ सीखा ? उस फकीर

"एक आदमी गरीब है, तो हिन्दुस्तान की फिलासफी कहती है कि वह इसलिए गरीब है कि उसने बुरे कर्म किए थे, जबकि सचाई यह है कि हिन्दुस्तान का समाज ऐसा है कि उस समाज के कर्मों के कारण उसे गरीब होना पड़ रहा है।"

ने कहा बहुत कुछ सीखा। अब तक मैं यही सोचता था कि जो गिरेगा उसी की गर्दन टूटेगी। आज मुझे पता चला कि गिरे कोई गर्दन किसी दूसरे की भी टूट सकती है। मेरा कोई हाथ ही न था गिरने में, न मैं मीनार पर चढ़ा था, न मैं गिरा ही। कोई और मीनार पर चढ़ा, कोई और गिरा। वह तो बच गया गर्दन मेरी टूट गई। उस फकीर ने कहा आज से मैं यह मानता हूं कि कर्मों का जो जाल है वह एक-एक का अलग- अलग नहीं, सबका संयुक्त, सामूहिक और इकट्ठा है।

एक आदमी गरीब है तो हिन्दुस्तान की फिलासफी कहती है कि वह इसलिए गरीब है कि उसने बुरे कर्म किये थे जबकि सचाई यह है कि हिन्दुस्तान का समाज ऐसा है कि उस समाज के कर्मों के कारण उसे गरीब होना पड़ रहा है। रूस में समाज बदल गया है और वहां कोई गरीब नहीं है। तो इसका एक ही मतलब हो सकता है अगर हिन्दुस्तान की जीवन दृष्टि सही हो तो, कि रूस में सब पुण्यात्मा पैदा होने लगे हैं जो गरीब नहीं हो सकते हैं, और हिन्दुस्तान में सब पापी पैदा हो रहे हैं जिनको गरीब होना पड़ रहा है। रूस में सब पुण्यात्मा पैदा होने लगे हैं जबकि रूस नास्तिक है और ईश्वर को नहीं मानता है और आत्मा को नहीं मानता है। और सब पुण्यात्मा वहां पैदा होते हैं क्योंकि वहां कोई गरीब नहीं है। और इस देश में सब पापी पैदा होते हैं जो सुबह से सांझ तक पूजा कर रहे हैं, प्रार्थना कर रहे हैं फिर भी पापी यहीं पैदा होते हैं ! थोड़ा सोचना पड़ेगा कि गरीबी व्यक्ति के कर्मों का फल है या समाज की व्यवस्था का परिणाम ? हिन्दुस्तान ने व्यक्ति के कर्मों को सब कुछ मान लिया और समूह की, समाज की कोई धारणा विकसित नहीं हो सकी और इसीलिए हिन्दुस्तान एक राष्ट्र नहीं बन सका। राष्ट्र बनने के पहले जरूरी है कि समूह की धारणा पैदा हो और हमें ऐसा लगे कि हमारा सुख साथ है, हमारा दुख साथ है। हिन्दुस्तान का दर्शन कहता है कि प्रत्येक का सुख दुख अपना अपना है। सबका सुख-दुख जैसी कोई चीज ही हमारे विचार में नहीं है। अगर हम ऐसी बातें माने चले जायेंगे कि मेरा दुख मेरा, आपका दुख आपका— तो फिर हम मिलेंगे कहां ? मिलने की सम्भावना वहां है जहां मेरा सुख आपका सुख बन सकता हो, आपका दुख मेरा दुख बन सकता हो। लेकिन सुख और दुख की ये अलग अलग धारायें एक एक व्यक्ति की समानान्तर चलती हैं और कहीं मिलती ही नहीं, तो यहां समाज कैसे पैदा होगा ? राष्ट्र कैसे पैदा होगा ? राष्ट्र तब पैदा होता है जब व्यक्तियों की धारायें समानान्तर नहीं चलतीं बल्कि आड़ी तिरछी बुनाव करती हैं। एक कपड़ा हम बुनते हैं—अगर हम सारे धागों को समानान्तर बुन दें, तो वे बुने ही नहीं जायेंगे, कपड़ा बनेगा ही नहीं धागे ही रहेंगे। सीधे धागे समानान्तर दौड़ते हों तो हम कितने ही धागे दौड़ा दें—पचास करोड़ धागे भी दौड़ा दें तो भी कपड़ा नहीं बनेगा। पचास करोड़ धागे दौड़ेंगे समानान्तर तो भी कपड़ा पैदा नहीं होगा। कपड़ा

पैदा होता है धागों के आड़े तिरछे दौड़ने से। एक दूसरे को क्रास करने से, एक दूसरे को आरपार करने से। और न केवल आरपार करने से बल्कि एक दूसरे के नीचे ऊपर भागने से कपड़ा निर्मित होता है। समाज एक कपड़ा है जिसमें व्यक्तियों का बुनाव चाहिए। लेकिन हिन्दुस्तान ने जो विचार पैदा किया है उसमें समाज का कपड़ा नहीं बन पाया व्यक्ति समानान्तर धागे बन के रह गये हैं। उसमें कहीं बुनाओ पैदा नहीं होता वे एक दूसरे को काटते नहीं हैं। अगर कोई बुनकर, अगर कोई जुलाहा इस भूल में पड़ जाये कि मैं समानान्तर धागों से कपड़ा बना लूंगा—तो जैसी नासमझी होगी वैसी ही नासमझी भारत के तत्व दर्शन में हुई है। हम समाज नहीं बना पाये। समाज के बनने के लिए जो पहली, अनिवार्य शर्त है वह यह कि 'मैं' और 'आप' जैसी दो चीजें नहीं हैं, 'मैं' और 'तू' एक बड़े 'हम' के हिस्से हैं। 'हम' ज्यादा बुनियादी सत्य है। 'मैं' और 'तू' उसमें ही दौड़ते हुए आड़े और सीधे धागे हैं। 'मैं' और 'तू' का इतना मूल्य नहीं है जितना हम का मूल्य है, क्योंकि हम के बिना 'मैं' और तू के धागों का कोई भी अस्तित्व नहीं रह जाता है। लेकिन इस देश में उल्टी बातें हो रही हैं, यहां 'मैं' और 'तू' बहुत महत्वपूर्ण है और प्रत्येक व्यक्ति को अपना मोक्ष खोजना है। प्रत्येक व्यक्ति को अपना स्वर्ग खोजना है प्रत्येक व्यक्ति को अपना सुख खोजना है। सबका तो यहां कोई सवाल ही नहीं है। और जब ऐसी जीवन दृष्टि हो—अत्यंत अहंकार केन्द्रित, स्वार्थी, हालांकि दिखती बहुत आध्यात्मिक है, लेकिन है बहुत स्वार्थी। दिखता ऐसा है कि हमारा देश बड़ी आध्यात्मिक बातें करता है लेकिन जहां 'मैं' केन्द्र है वहां अध्यात्म कैसा ? अगर मोक्ष भी जाना है तो मुझे—मैं अपने मोक्ष की तलाश कर रहा हूं। समाज का भी कोई मोक्ष हो सकता है इसका यहां कोई सवाल ही नहीं है। व्यक्ति का मोक्ष नहीं समाज का एक भाव पैदा होना चाहिए जो कि यहां नहीं हुआ है। अगर कोई मुल्क पर हमला करे तो ठीक है ! कोई राज्य करे हमें क्या फर्क पड़ता है ? कोई की गुलामी हो हमें क्या असर पड़ता है ? कोई हो नृप हमें क्या हानि ? हम यही कहेंगे क्योंकि एक एक व्यक्ति को अपनी अपनी फिक्र करनी है।

तीसरी बात हम इस पृथ्वी के साथ अत्यंत दुर्व्यवहार कर रहे हैं। हम इस पृथ्वी के साथ ऐसा व्यवहार कर रहे हैं जैसा कोई वेटिंग रूम के साथ करता है। वेटिंग रूम में देखा आपने—लोग बैठे हैं वहीं, मूंगफली के छिलके भी डाल रहे हैं, वहीं सिगरेट भी फेंक रहे हैं वहीं पान भी थूक रहे हैं। वहीं गला और नाक भी साफ कर रहे हैं। और अगर पूछिये कि आप ये क्या कर रहे हैं तो वे कहेंगे कि ये क्या हमारे बाप का घर है। हम तो थोड़ी देर बाद, हमारी ट्रेन आ जायेगी तो चले जायेंगे। उनके पीछे आने वाले लोग भी इस जगह के साथ यही व्यवहार करेंगे। उनके पहले आने वाले लोगों ने भी यही व्यवहार किया था, क्योंकि वेटिंग रूम, प्रतीक्षालय किसी का भी घर नहीं है। भारत में देश के साथ, भूमि के साथ, इस लोक के साथ, इस समाज के साथ प्रतीक्षालय

हमने इस देश में समाज को तरलता से छुटकारा दिला दिया है, उसे ठोसपन दे दिया है। कुछ होशियार लोग हुए और उन लोगों ने समाज की सारी तरलता छीन ली है।

का व्यवहार चलता है। हम यह कह रहे हैं कि सबकी तारीख बंधी है, सबको अपने अपने समय पर मौत आ जायेगी, सबको अपनी अपनी गाड़ी पकड़ लेनी है और चले जाना है। यह तो थोड़ी देर का विश्राम है। यह तो सराय है, यह तो एक धर्मशाला है जिसमें हम थोड़ी देर टिके हैं और अलग हो जायेंगे। अगर कोई समाज ऐसा सोचता हो और भाव करता हो तो फिर कैसे निर्मित होगा ? कैसे इसे हम सुख पूर्ण बनायेंगे ? कैसे इसे हम कल्याणकारी बनायेंगे ? कैसे इसे हम मंगलदायी बनायेंगे ? और जब सबका यह व्यवहार हो इस देश के साथ तो कैसे यह देश गौरव को, गरिमा को, संगठन को, महानता को उपलब्ध हो सकता है ?

यह तीन बातें और इन तीन बातों के साथ एक थौथा तत्व—वह हमें खाये जा रहा है। हजारों साल हो गये और हमने इस देश में समाज को तरलता से छुटकारा दिला दिया है, उसे ठोसपन दे दिया है। कुछ होशियार लोग हुए और उन लोगों ने समाज की सारी तरलता छीन ली है। उन्होंने कुछ लोगों को शूद्र कह रखा है जो नीचे हैं, दीन हैं, दरिद्र हैं, जिनके पास संपत्ति नहीं जो चालाक नहीं, जो धोखा और बेईमानी नहीं कर सके या प्राथमिक रूप से जिन्हें किसी भी तरह दबा दिया गया—उन सबको शूद्र बना दिया। समाज का एक बड़ा हिस्सा शूद्र बन कर बैठ गया। समाज की आधार भूमि अत्यंत अपमानित हो गई और इन शूद्रों को अपना जिन्दगी को बदलने का ऊपर उठने का कोई मार्ग नहीं है। समाज की जो दीर्घा है उसमें चढ़ने का कोई अवसर नहीं है। ये जहां हैं वहीं पैदा होंगे, वहीं मरेंगे। ये समाज में कोई प्रतियोगिता नहीं कर सकते। ये समाज में कोई गति नहीं कर सकते। वे ठोस और जड़ हो गये हैं। उनको कोई गति, विकास, और प्रतियोगिता और महत्वाकांक्षा का कोई सवाल नहीं है। शूद्रों की बड़ी कतार नीचे ठोस करके रोक दी गई है। उसी तरह वैश्य हैं, क्षत्रिय हैं, ब्राह्मण हैं वे सब भी एक-एक अलग अलग खड़े हो गये हैं। इन सबके बीच कोई लेन देन नहीं है, क्योंकि सबसे बड़ा लेन देन होता है विवाह का-और यह विवाह का लेन देन बंद है। शूद्र की लड़की ब्राह्मण के लड़के से प्रेम नहीं कर सकती है। और न ब्राह्मण की लड़की शूद्र के लड़के से प्रेम कर सकती है। समाज में आपस का सारा व्यवहार विवाह के आधार पर खंडित और तोड़ दिया गया है कोई कहीं गति नहीं हो सकती है। इसलिए धीरे धीरे हिन्दुस्तान में अनेक समाज पैदा हो गये हैं एक समाज नहीं। जो समाज आपस में विवाह कर सकता है वह एक अलग खंड हो गया है। और जिससे वह विवाह नहीं कर सकता है वह एक अलग खंड हो गया है। और प्रत्येक खंडों के अपने स्वार्थ हैं। अखंड का सबका कोई स्वार्थ नहीं है। अगर समझ लें क्षत्रियों का राज्य है और मुसलमान हमला करते हैं तो शूद्रों को क्या प्रयोजन है कि वे झगड़े में उतरे ? क्षत्रिय जानें मुसलमान जानें। शूद्र तो शूद्र ही रहेगा—क्षत्रिय जीत जायें तो, मुसलमान जीत जायें तो। बल्कि इस बात की सम्भावना ज्यादा है कि मुसलमान के जीतने से शूद्र को कुछ सुविधायें मिल जायें, क्षत्रिय के जीतने से तो कभी नहीं मिल सकतीं। समाज का एक बड़ा वर्ग जो समाज का प्राण है और समाज की शक्ति है—वह इतनी उपेक्षा में खड़ा हो गया है, इतना त्रस्त हो गया है कि उसे कोई भी मतलब नहीं कि कहां क्या हो रहा है। क्योंकि उसकी जिन्दगी में कोई भी फर्क नहीं पड़ेगा। तो क्या फर्क पड़ता है अगर आज चीन का हमला हो तो भारत के शूद्र को क्या फर्क पड़ता है ? हां, एक फर्क पड़ता है, चीन के अन्तर्गत भारत का शूद्र ज्यादा सम्मानित होगा बजाय शंकराचार्य के इस भारत के, जिसमें आज वह इतना अपमानित है। तो ठीक है, उसे गुलामी से क्या फर्क पड़ने वाला है शायद सुविधा मिल सकती है। और यह सच है कि अंग्रेजों की २०० साल की गुलामी में हिन्दुस्तान के शूद्रों को जितनी सुविधा मिली उतनी हिन्दुस्तान के पांच हजार वर्ष के इतिहास में कभी भी नहीं मिली। तो ये गुलामी शूद्र को गुलामी क्यों मालूम पड़े। अंग्रेज न होते तो अम्बेडकर जैसा आदमी शूद्रों में कभी भी पैदा नहीं हो सकता था। पांच हजार साल में एक भी अम्बेडकर की हैसियत का आदमी पैदा नहीं हुआ। पैदा कैसे होगा ? शूद्र पढ़ नहीं सकता, लिख नहीं सकता, सुन नहीं सकता।

राम जैसे अद्भुत व्यक्ति के हाथ से भी वाल्मीकि ने जो कृत्य करवाया है वह सोचने जैसा है। वाल्मीकि में कथा है कि एक ब्राह्मण का एक नौजवान पुत्र मर गया। वह ब्राह्मणी राम के पास अपने नौजवान पुत्र की लाश लेकर पहुंच गई और पूछती है कि "कैसा पाप हो रहा है देश में कि मेरा जवान पुत्र मर गया। बाप जिंदा है, मां जिन्दा है और जवान पुत्र मर गया ?" राम वशिष्ठ से पूछते हैं कि क्या कारण होगा ? वशिष्ठ कहते हैं कि ऐसा मालूम पड़ता है कि कोई शूद्र वेद का पाठ कर रहा है। इसके सिवाय ऐसी दुर्घटना कभी नहीं घट सकती। तो उस शूद्र का पता लगाओ कि कौन शूद्र वेद का पाठ कर रहा है। शूद्र के वेद पढ़ने से ब्राह्मणी का

जवान बेटा मर गया। मजे की बातें हैं। फिर उस शूद्र को पकड़ लिया गया। शम्भूक नाम के शूद्र को पकड़कर उसके कानों में शीशा पिघलवाकर डाल दिया गया। उसे मार डाला गया। और ब्राह्मणी का बेटा जी गया।

जहाँ शूद्र के बेटे के वेद पढ़ने से ब्राम्हण का बेटा मरता हो वहाँ ब्राह्मण के बेटे और शूद्र के बेटे का स्वार्थ एक कैसे हो सकता है ? जहाँ शूद्र की हत्या से ब्राह्मण का मरा हुआ बेटा जिन्दा हो जाता हो वहाँ ब्राह्मण और शूद्र के बीच कौन सा कामन इँटरेस्ट हो सकता है, कौन सा समान भाव हो सकता है, कौन सा समान स्वार्थ हो सकता है ?

क्योंकि जो पाप हो रहा था शूद्र के ज्ञान अर्जन करने से वो पाप बंद हो गया। ऐसी अद्‌भुत, मूढ़ता पूर्ण, जड़ता पूर्ण, बातें जिस देश के प्राणों में समाई हों उस देश में समाज कैसे पैदा होगा ? जहाँ शूद्र के बेटे के वेद पढ़ने से ब्राह्मण का बेटा मरता हो वहाँ ब्राह्मण के बेटे और शूद्र के बेटे का स्वार्थ एक कैसे हो सकता है ? जहां शूद्र की हत्या से ब्राह्मण का मरा हुआ बेटा जिन्दा हो जाता हो वहाँ ब्राह्मण और शूद्र के बीच कौन सा कामन इंटरेस्ट हो सकता है, कौन सा समान भाव हो सकता है, कौनसा समान स्वार्थ हो सकता है ?

हिन्दुस्तान में समाज का कोई समान स्वार्थ पैदा नहीं हो सका इसलिए समाज पैदा नहीं हो सका, इसलिए राष्ट्र पैदा नहीं हो सका। हिन्दुस्तान अनेक हिस्सों में टूटकर खड़ा हुआ है। फिर हिन्दुस्तान के बाहर से लोग आये मुसलमान आये, हूण आये, अंग्रेज आये, ईसाई आये, पारसी आये,—और वे सब भी अलग-अलग टुकड़ों में खड़े होते गये। क्योंकि हिन्दुस्तान तो अपनों को ही पचाने में असमर्थ है, दूसरों को कैसे पचाता। हिन्दुस्तान में पाचन शक्ति बिलकुल नहीं है। शूद्रों को ही नहीं पचा सकता तो मुसलमान को कैसे पचायेगा ? अंग्रेज को कैसे पचायेगा ? ईसाई को कैसे पचायेगा ? पारसी को कैसे पचायेगा ? कोई आकर हिन्दुस्तान की आत्मा में एक नही हो सका वे सब अलग खड़े होते चले गये। उसका फल हमने भोगा कि हिन्दुस्तान बंटा। पाकिस्तान के बनने का कारण मुसलमान नहीं है। पाकिस्तान के बनने का एक ही कारण है—हिन्दुस्तान के पचाने की क्षमता एकदम ही समाप्त हो गई है। अन्यथा जो इस मुल्क में आया वह हमारा हो जाना चाहिए था। लेकिन हमारा कहने की हमारी हिम्मत ही खत्म हो गई है। अब आज नहीं कल ईसाई अलग माँग करेगें, सिख अलग माँग करेंगे। कोई भी अलग माँग कर सकता है क्योंकि किसी को भी हम पचा तो सकते नहीं। 'हम' कहने की हमारी हिम्मत ही नहीं रही है। हर खंड अपने को अलग मानने को तत्पर है। और ऐसे देश में, इतने बड़े देश में और भी बहुत सी बातें चली तोड़ने वाली जो बिलकुल ही स्वाभाविक हैं क्योंकि मूल भाव अगर मिलन का न हो तो फिर कोई भी कारण तोड़ने वाला बन सकता है।

यह चार बातें में कहना चाहता था। बाहर का जगत असत्य है। प्रत्येक व्यक्ति की अपने कर्म की समानान्तर रेखा है, उसका दूसरे से कहीं कोई मेल नहीं होता। कहीं कुछ मिलता ही नहीं एक दूसरे से, कोई समान स्वार्थ नहीं है। और देश के प्रत्येक वर्ण को ठोस कर दिया गया है। उसमें कहीं कोई गति नहीं रह गई है। एक वर्ग से दूसरे वर्ग में जाने का कोई उपाय नहीं रह गया है। एक वर्ण दूसरे वर्ण में यात्रा नहीं कर सकता। एक जाति दूसरी जाति में कोई यात्रा नहीं कर सकती। एक धर्म दूसरे धर्म में यात्रा नहीं करता। चीन में कोई भी धार्मिक दंगा आज तक नहीं हुआ। हो भी नहीं सकता है। इसका कारण यह नहीं है कि चीन के लोग बड़े सहिष्णु हैं। कारण बिलकुल दूसरा है। कारण यह है कि चीन में एक-एक घर में चार चार, पाँच पाँच धर्मों के लोग भी मिल सकते हैं। वहाँ विवाह मुक्त है। ईसाई बौद्ध से विवाह कर सकता है, बौद्ध मुसलमान से विवाह कर सकता है। कन्फूसी, ताओ धर्म के मानने वाले से

विवाह कर सकता है, और विवाह करने से किसी का धर्म रूपान्तरित नहीं होगा। यदि एक बौद्ध ईसाई लड़की से विवाह करे तो आई हुई पत्नि ईसाई ही रहेगी और वह बौद्ध ही रहेगा। और इनके जो बेटे होंगे वे उम्र पाने पर खुद निर्णय करेंगे कि उन्हें किस धर्म का होना है—ईसाई, बौद्ध, मुसलमान, पारसी या कुछ और। वे जो भी होना चाहें वह उनका अपना निर्णय होगा। तो परिणाम यह हुआ है कि एक ही घर में कहीं पत्नि मुसलमान, पति बौद्ध और बच्चे कोई और धर्म के हैं। तो अब ऐसे देश में जहाँ एक ही घर में चार, पाँच धर्मों के लोग हैं धार्मिक दंगे कैसे हो सकते हैं? अगर हिन्दुस्तान में हिन्दु और मुसलमान, मुसलमान और जैन, हिन्दु और जैन, इन सब के आपस में विवाह होते तो क्या हिन्दुस्तान कभी दो टुकड़ों में बंट सकता था। कौन बाँटता? कैसे बाँटता? पत्नि वहाँ जाती, पति यहाँ रहता? बेटे वहाँ जाते, बहिन यहाँ रहती? क्या होता? हिन्दुस्तान बंट सका क्योंकि हिन्दु मुसलमान अलग-अलग खड़े थे। इसलिये बटाँव आसान हो सका। अगर आज जबलपुर के सब घरों में एक दूसरे धर्मों के लोग प्रविष्ट हों तो यहाँ कोई धार्मिक दंगा हो सकता है? दंगा कैसे होगा? कौन किससे लड़ने जायेगा? लेकिन नहीं, मुसलमान एक मुहल्ले में अलग इकठ्ठे हैं, हिन्दु अलग इकट्ठे हैं। जैन एक मोहल्ले में अलग इकठ्ठे हैं, तो झगड़ा कभी भी हो सकता है। एक दूसरे घर में गति होनी चाहिए। विवाह के ऊपर से सब धर्मों के सारे बंधन हट जाना चाहिए। जाति और वर्णों के एक दूसरे के भीतर प्रवेश के उपाय होना चाहिए। तो एक दूसरे में प्रवेश करने वाले ताने-बाने बुन जावेंगे। और उन तानों-बानों से एक राष्ट्र निर्मित होगा। अन्यथा राष्ट्र निर्मित नहीं हो सकता। अन्यथा कोई उपाय नहीं है। अगर हिन्दुस्तान की आने वाली पीढ़ियों को वे ही नासमझियाँ न दोहरानी हों, जो पिछली पीढ़ियों ने दुहराई हैं, तो उन्हें कुछ निर्णय लेने चाहिये। कुछ बहुत छोटे निर्णय बहुत परिणाम लायेंगे। जैसे मेरा मानना है कि किसी भी बेटे को किसी भी बेटी को अपनी ही जाति में शादी करने के आग्रह से इन्कार करना चाहिये। कोई अपनी ही जाति में शादी करने के लिए तैयार न हो। जहाँ तक हो सके दूसरी जातियों से शादी का व्यवहार बढ़ाना चाहिये।

हिन्दुस्तान का ताना-बाना एक दूसरे में प्रवेश कर जायेगा। लोगों को अपने नाम भी रखने में बहुत विचार करना चाहिए। यहाँ नाम देखकर ही पता चल जाता है कि हिन्दु है कि मुसलमान है। रामप्रसाद अगर नाम है तो पता चल जाता है कि हिन्दु है और खुदाबख्स अगर नाम है तो पता चलता है मुसलमान है। हालांकि दोनों का मतबल एक ही होता है। तो कुछ रामप्रसादों को तैयारी करना चाहिये कि खुदाबख्स हो जायें और कुछ खुदाबख्सों को तैयारी करना चाहिये कि रामप्रसाद हो

सरकारी किसी फार्म पर किसी आदमी का धर्म नहीं पूछना चाहिए। कोई आदमी किसी धर्म का हो इससे क्या मतलब है? अगर वह चोरी करता है, तो चोरी करता है, चाहे हिन्दु हो चाहे मुसलमान हो। किसी चोर से यह फार्म भरवाना कि वह किस जाति का है बेमानी है।

जायें। मेरे एक मित्र है बिहार में, उन्होंने बड़ा अदभुत नाम रखा है। बड़ा प्यारा नाम है—अल्बर्ट कृष्ण अली। अल्बर्ट ईसाई से। कृष्ण हिन्दु से। और अली मुसलमान से। अब उनको पहचानना मुश्किल है कि यह आदमी किस जाति का है, किस धर्म का है। आने वाले बच्चों के नाम तो कम से कम ऐसे रखें कि वे पहचाने न जा सकें कि किस जाति के है, किस धर्म के हैं। वे आदमी मालुम पड़ें न कि हिन्दु, मुसलमान, या ईसाई।

हिन्दुस्तान को सरकार अपने को धर्म निरपेक्ष कहती है लेकिन अपने फार्मों पर भरवाती है कि आपका धर्म क्या है यह बात गलत है। गैरसंप्रदायक सरकार को, धर्म निरपेक्ष सरकार को सरकारी किसी फार्म पर किसी

आदमी का धर्म नहीं पूछना चाहिये। कोई आदमी किसी धर्म का हो इससे क्या मतलब है? अगर वह चोरी करता है तो चोरी करता है, चाहे हिन्दु हो चाहे मुसलमान हो। किसी चोर से यह फार्म भरवाना कि वह किस जाति का है—बेमानी है। कोई बेटा स्कूल में पढ़ने गया है, कोई लड़का स्कूल में पढ़ने गया है तो उससे यह फार्म पर भरवाना बिलकुल गलत बात है कि वो हिन्दु है कि मुसलमान है या ईसाई है कि जैन है। इसके भरवाने की कोई आवश्यकता नहीं है। सरकार के किसी भी फार्म पर धर्मों का कोई भी उल्लेख नहीं होना चाहिये सरकार के लिये तो सारा मुल्क एक जैसा होना चाहिये कि सब आदमी हैं। लेकिन सरकार बहुत अजीब है वह हिन्दु कोडबिल बनाती हैं—धर्मनिरपेक्ष होकर! मुसलमानों की स्त्रियों के लिये अलग कानून है, हिन्दुओं की स्त्रियों के लिए अलग कानून है, तो ये देश कैसे इकट्ठा होगा? इसमें राष्ट्र की भावना कैसे पैदा होगी। कानून होना चाहिये स्त्री को देखकर। कानून हिन्दू और मुसलमान की स्त्री को देखकर नहीं हो सकता। और सरकार अगर यह हिसाब रखती है कि हिन्दू की स्त्री के लिये अलग कानून, मुसलमान स्त्री के लिये अलग कानून, हिन्दू कोडबिल अलग और मुस्लिम ला अलग तो फिर यह मुल्क झूठ कहता है कि यह गैरसांप्रदायिक है, धर्म निरपेक्ष है। नहीं, यह धर्म निरपेक्ष नहीं है।

यह बड़ी अजीब बात है कि एक मुसलमान चार औरतें रख सके और कोई दिक्कत न हो और एक हिन्दु एक ही औरत रख सके और दो रखे तो मुश्किल में पड़ जाये। एक ही राष्ट्र, एक ही समाज के भीतर इस तरह के दो कानून दो राष्ट्रों को पैदा करने वाले होते हैं। यह बात विचारी जाना चाहिये, अगर चार औरतें रखना ठीक है तो हिन्दु को भी चार औरतें रखने का हक होना चाहिये यह हिन्दु मुसलमान का सवाल नहीं है, सवाल यह है कि चार औरतें रखना ठीक है या नहीं। अगर ठीक है तो सबको हक होना चाहिये और अगर गलत है तो फिर किसी को भी हक नहीं होना चाहिये कि वह चार औरतें रख सके। लेकिन जो सरकार यह सोचती है कि हिन्दु के लिए अलग नियम, मुसलमान के लिए अलग नियम वह कैसी धर्म निरपेक्ष है? इसका अर्थ क्या हुआ? हमें पता नहीं चलता है कि हम किस भांति रिकगनीशन देते हैं भेदों को। अभी मैं अहमदाबाद में था। वहां के हरिजन मेरे पास आये और कहने लगे कि गांधीजी तो हरिजनों के घर में ठहरते थे, आप हरिजनों के घर में क्यों नहीं ठहरते हैं? आप भी हरिजनों के घर में ठहरें!

मैंने उन्हें एक कहानी कही: जर्मनी के एक छोटे से चर्च के निरीक्षण के लिए जर्मनी का जो सबसे बड़ा पोप है वह गया। नियम यह है कि जब भी बड़ा धर्मगुरु आये तो उसके स्वागत में चर्च की घंटियां बजाई जायें। लेकिन उस गांव के चर्च में घंटिया नहीं बजीं। और जब पादरी भीतर गया तो उसने उस छोटे चर्च के पुरोहित

मैं किसी आदमी को हरिजन नहीं मानता हूं, इसलिए कैसे खोजूं कि कौन हरिजन है? और किसके घर जाऊं! मैं घर में ठहरता हूं, तुम अगर आकर मुझसे कहो कि हमारे घर चलो तो तुम्हारे घर चलूंगा।

को पूछा कि क्या बात है? जहां भी मैं जाता हूं चर्च की घंटियां बजाने का नियम है। तुम्हारे चर्च में घंटियां क्यों नहीं बजीं? उस छोटे पादरी की आदत थी, कि वह हर बात में कहता था कि इसके हजार कारण हैं, वह उसका तकिया कलाम था। तो उसने कहा कि इसके हजार कारण हैं। और पहला कारण तो यह है कि इस चर्च में घंटियां ही नहीं हैं। उस बड़े पादरी ने कहा कि बाकी कारण रहने दो यह एक ही कारण पर्याप्त है। बाकी की कोई जरूरत नहीं है।

मैंने भी उन हरिजनों से कहा कि इसके हजार कारण हैं, पर मैं तुम्हें एक ही कारण कहता हूं और वह एक ही पर्याप्त है—कि मैं किसी आदमी को हरिजन नहीं मानता हूं, इसलिए कैसे खोजूं कि कौन हरिजन है?

और किसके घर मैं जाऊं ? मैं घर में ठहरता हूं, तुम अगर आकर मुझसे कहो कि हमारे घर चलो तो मैं तुम्हारे घर चलूंगा। लेकिन अगर तुम कहते हो कि हम हरिजन है इसलिये हमारे घर चलो तो मैं नहीं जाऊंगा क्योंकि तुम्हें हरिजन मानना ही तो बड़े से बड़ा पाप है। तुम्हें हरिजन मानना ही तो स्वीकृति है। और स्वीकृति के बाद फिर भेद नष्ट नहीं होता है।

बड़ा मज़ा है, हरिजन खुद अपने को हरिजन कहे चला जा रहा है। अछूत शब्द बहुत अच्छा था, हरिजन शब्द बहुत खतरनाक है। अछूत अच्छा था क्योंकि उसमें चोट थी और आदमी अपने को अछूत कहना पसंद नहीं करता था। उस शब्द में अपमान था इसलिए उसे मिटाने के लिए अछूत भी कोशिश करता था। लेकिन हरिजन शब्द बहुत खतरनाक है, इसे हरिजन भी अकड़ से कहता हैं 'मैं हरिजन हूं' और समझता है कि जैसे बहुत गौरव की बात हो गई हरिजन होना।

यह वैसा ही है जैसे कोई बीमारी का नाम बदल दे और कैंसर को श्री देवी कहने लगे और फिर अकड़ के कहे कि मुझे श्री देवी हो गई हैं ! इससे क्या फर्क पड़ता है कि कैंसर को क्या कहते हो ? अछूत को हरिजन कहते हो इससे कोई फर्क नही पड़ता। लेकिन हमारा मुल्क बहुत बेईमान है। हम शब्दों से खेलते हैं। अछूत को हरिजन कहने लगे और बड़े प्रसन्न हैं। गरीब को दरिद्रनारायण कह दें तो दरिद्रनारायण भी बहुत प्रसन्न होते हैं और हम भी प्रसन्न होते हैं। १९५२ में वहां हिमालय के आसपास नीलगाय खेतों में बहुत उपद्रव मचा रही थी उसकी संख्या बहुत बढ़ गई थी। लेकिन उसके पीछे गाय शब्द लगा हुआ है तो सरकार डरती थी कि अगर कहीं गोली मारे तो गाय के बेटे नाराज न हो जायें, क्योंकि इस मुल्क में गाय के बेटे भी हैं ! गौ को माता मानने वाले लोग भी हैं वह कहीं नाराज न हो जायें। तब संसद में एक आदमी ने यह सुझाव रखा कि पहले नील गाय का नाम नील घोड़ा कर दो। कानूनन इसको नील घोड़ा मानलो और इसके बाद धड़ाधड़ गोलियां चलाओ फिर कोई झंझट न होगी। और यही हुआ नील गाय का नाम नील घोड़ा कर दिया गया। फिर नील घोड़ा मारा गया लेकिन फिर न शंकराचार्य नाराज हुए और न गौभक्त नाराज हुए ! वे नाराज होते, अगर नील गाय मारी जाती तो जरूर नाराज होते। नाम बदल दिया, तरकीब मिल गई, बात खत्म हो गई। अछूत को हरिजन कहा जा रहा है, यह जहर पर शक्कर लपेटने की तरकीबें हैं और फिर हरिजन भी अकड़ कर कहता है "मैं हरिजन हूं, मेरे घर नहीं ठहरियेगा ? हरिजन के घर ठहरना चाहिए।"

लेकिन कोई आदमी हरिजन है, कोई आदमी अछूत है यह कैसी अभद्र बात है। हरिजन खुद ही अपने को कहे चला जाता है। दूसरे कहते है सो तो ठीक है लेकिन

असली क्रांति की जरूरत है कि किसी भी आदमी का धर्म उसकी व्यक्तिगत मान्यता है, उसका व्यक्तिगत विचार है। धर्म का कोई संबंध, विवाह से, मकान से, दूकान से, मंदिर से, विद्यालय से नहीं होना चाहिये।

हरिजन स्वयं भी अपने को हरिजन कहता है। उससे भी नहीं होता कि कहदे कि मैं सिर्फ आदमी हूं। लेकन नहीं वह कहता है कि हमको मंदिर में प्रवेश चाहिए। जिस मंदिर के पुजारी ने तुम्हें इतने दिन तक नर्क में रखा है उसी मंदिर के पुजारी के चरणों में जाने के लिए इतने लालायित क्यों हो ? लेकिन नेतागण समझा रहे हैं कि मंदिर प्रवेश बहुत बड़ी क्रांति है। जो मंदिर में प्रवेश करते रहे हैं उनका जीवन कौनसा बदल गया है ? और जो मंदिर में जाते रहे हैं सदा से वे कौन से धार्मिक हो गये हैं और उन्होंने कौन से परमात्मा को पा लिया है ? इस बेचारे गरीब हरिजन को भी मंदिर में प्रवेश करके कौनसा परमात्मा उपलब्ध हो जाने वाला है ? लेकिन हम इस मुल्क में क्रांति की एक झूठी हवा पैदा

करने की कोशिश करते रहते हैं जिससे असली क्रांति रुक जाती है। असली क्रांति की जरूरत है कि किसी भी आदमी का धर्म उसकी व्यक्तिगत मान्यता है, उसका व्यक्तिगत विचार है। धर्म का कोई संबंध, विवाह से मकान से, दूकान से, मंदिर से, विद्यालय से नहीं होना चाहिये। अब हिन्दू यूनिवर्सिटी चल रही है काशी में—धर्म निरपेक्ष राज्य है! मुस्लिम यूनिवर्सिटी चल रही है अलीगढ़ में—सेक्यूलर स्टेट है! यह मुल्क कभी एक कैसे होगा? सरकार को सारी सुविधायें देना समाप्त करना चाहिए हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस के लिए और मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ के लिये। और जिन-जिन संस्थाओं के साथ, जैन, हिन्दू, पारसी, मुस्लिम लगा है उनको सारी सुविधायें देना बंद करना चाहिये। क्योंकि ये गलत नामों का प्रचार हो रहा है। किसी विद्यालय के साथ किसी धर्म का नाम नहीं जोड़ा जा सकता। अगर जोड़ना है तो उस धर्म के लोग उसे चलायें उसे सरकार से कोई सहायता नहीं मिलना चाहिए। उसको समाज से कोई सहायता नहीं मिलना चाहिए। लेकिन ये सब चल रहा है। एक तरफ यह सब जारी है और दूसरी तरफ हम मुल्क को एक करने का विचार भी करते हैं तो यह कैसे एक होगा? वह कैसे एक हो सकता है? एक हो सकता है अगर हम यह आधारभूत धारणायें तोड़ने की हिम्मत करें और कुछ प्रयोग करें। यह एकता ऐसे नहीं हो जायेगी कि मैं समझाऊं या कोई और समझाये और ये हो जाये। हमें कुछ कदम उठाने पड़ेंगे। जैसे प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म की मान्यता को अत्यंत निजी बना लेना चाहिए। उसकी सार्वजनिक घोषणा की कोई जरूरत नहीं है। मैं किस धर्म को मानता हूं, किस पद्धति को मानता हूं, किस प्रार्थना को स्वीकार करता हूं—यह मेरा निजी मामला है इनकी सामूहिक घोषणा की कोई जरूरत नहीं है। यह मेरे एकान्त का मामला है कि मैं किस ग्रंथ को पढ़ता हूं, किस भगवान का नाम लेता हूं—इसकी सार्वजनिक घोषणा की कोई जरूरत नहीं है। और तब हमारे बीच भेद के जो फासले हैं—हिन्दू के, मुसलमान के, ईसाई के, जैन के, वे तत्काल गिर जायेंगे और आदमी आदमी के ज्यादा निकट आ सकेगा। कोई शूद्र है और न कोई ब्राह्मण है, न कोई वैश्य है, न कोई क्षत्रिय है, हर आदमी, आदमी है और उसे हक है कि वह जो होना चाहे हो। जन्म से कुछ भी तय नहीं होता कि कौन आदमी क्या है। हर आदमी अपने जीवन से होता है, वह जो होना चाहे हो। जन्म के साथ अगर आदमी बंध गया तो जीवन का क्या मतलब है। जीवन का अर्थ ही है जो होना चाहें उसके होने की स्वतंत्रता—यह हवा मुल्क के एक-एक आदमी तक पहुंच जानी चाहिये कि हर आदमी जो होना चाहे हो सकता है। किसी को, किसी दूसरे को रोकने का हक भी नहीं है। यह हमें प्रयोग करना पड़ेगा। नामों की बदलाहट करना पड़ेगी। विवाह को मुक्त बनाना पड़ेगा। और विवाह आज मुक्त हो जाये अगर हम अरेन्जड मैरिज (Arranged marriage) से बचने की हिम्मत कर लें।

यह थोड़ी सी बातें मैंने कहीं, वही बुनियादी बाधायें हैं। कुछ प्रयोग मैंने कहे, उन्हें अगर हम कर सकें तो कोई कारण नहीं है कि बाधायें मार्ग से न हट जायें और हिन्दुस्तान एक राष्ट्र के रूप में खड़ा हो सके। एक राष्ट्र हो सके, हिन्दुस्तान में एक राष्ट्र भाव पैदा हो सके तो वह राष्ट्रीय सीमाओं का भी अतिक्रमण कर सकेगा और अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर बढ़ सकेगा। लेकिन यह हो सके इसके लिए जरूरी है कि हम खंड-खंड के ऊपर उठें और उन सारी बाधाओं को जो एकता के मार्ग में अवरोध बनी हैं धराशायी कर दें।

मधु संचयन

संकलन : सुश्री गीता

★ ईश्वर को खोजना व्यर्थ है। उचित है कि उसे जिओ। जीवन में उसे प्रकट करो। जो उसे श्वास प्रश्वास की भांति जीता है, वही उसे पाता है।

★ सत्य को पाना है और शास्त्रों को खोजते हो ? इससे अधिक पागलपन और क्या होगा ? सत्य से तो शास्त्रों का जन्म हो सकता है किन्तु शास्त्रों से सत्य का जन्म न कभी हुआ है और न कभी होगा। शास्त्रों में नहीं, वह तो स्वयं में है।

★ अंधकार भीतर है तो बाहर का कोई प्रकाश प्रकाश नहीं है।

★ जीवन एक है—समग्र जीवन एक है। यह अनुभव ही प्रेम है।

★ जीवन उनके लिए है जो जीवन के प्रति मरना जानते हैं।

★ मित्र ! अशुभ को छोड़ा है, शुभ को भी छोड़ दो। क्योंकि जहां तक किसी पर भी पकड़ है, वहां तक अहंकार है।

★ शरीर तो मंदिर है उससे लड़ो नहीं, उसमें खोजो। उससे होकर ही तो परमात्मा तक पहुंचा जाता है। परमात्मा का जिसमें वास है, क्या वह इस कारण ही पवित्र नहीं है ? शरीर तो एक तीर्थ है। उसकी शक्तियों को जो आत्मोन्मुखी करने में समर्थ होता है, वह उसके प्रति अत्यंत कृतज्ञता से भर जाता हो तो कोई आश्चर्य नहीं है।

★ हृदय में घृणा का विष हो तो जीवन में आनंद के फूल कैसे खिलेंगे ? उनके लिए तो निरन्तर ही प्रेम की अंतःधारा चाहिए। प्रेम का अमृत जहां है वहीं आनंद के फूल हैं।

★ सदगुण सुख है।

★ मैं कहता हूं : 'दो ! दो! दो !' करुणा दो, सेवा दो, प्रेम दो। जो, जो देता है वही वापस पाता है।

★ सुख का सूत्र तो एक ही है : पैर संसार में और प्राण परमात्मा में।

भेंट वार्ता

'दिमाग के बुनियादी ढांचे तोड़े बिना कोई क्रांति सम्भव नहीं'

आचार्य श्री रजनीश से विख्यात समाजवादी नेता श्री जार्ज फर्नाण्डिस की वार्ता

संकलन : श्री श्याम नारायण चौकसे

जार्ज फर्नाण्डिस : यह जो समस्यायें हैं और जिनको आप इतने साफ और स्पष्ट रुप में पेश कर रहे हैं, इनमें से बाहर आने का जो रास्ता है—क्रांति का जो पहलू है, उसके बारे में आप क्या सोच रहे हैं ?

आचार्य रजनीश : बहुत सोचता हूं—पहली तो बात यह सोचता हूं कि इस मुल्क को क्रांति का रास्ता न मिलने का कारण, क्रांति के लिए हमारी बहुत जल्दबाजी है। अभी तो इस मुल्क के सामने विचार भी बहुत स्पष्ट नहीं है। हमें हमारी समस्यायें ही बहुत साफ और स्पष्ट नहीं हैं जिनका कि हम समाधान खोजें। मेरी समझ यह है कि अगर कोई भी समस्या ठीक से स्पष्ट हो जाये तो पचास प्रतिशत समाधान तो उसके स्पष्ट हो जाने में हो जाता है और बाकी के पचास प्रतिशत समाधान को, क्रांति को उसकी छाया की तरह आना पड़ता है।

इस देश की सारी तकलीफ यह है कि माइंड सारा कंफ्यूज्ड है। जिसको हम समस्या कह रहे हैं, वह असल में समस्या ही नहीं है। और जिसकी हम कोई बात ही नहीं कर रहे हैं—वह समस्या है। तो जो समाधान हम सुझा रहे हैं वे उन समस्याओं के हैं, जो हैं ही नहीं। जिन समाधानों की हम बात कर रहे हैं उनका समस्याओं से कोई संबंध ही नहीं है, कोई तालमेल ही नहीं है।

इधर तो मेरी सारी ताकत अभी इस बात में लगती है कि देश के सामने साफ-साफ स्पष्ट हो जाये कि सच में हमारी समस्या क्या है—कहां कहां है—कैसी है। इस मुल्क की एक पुरानी आदत रही है कि हम तैयार समाधानों पर ज्यादा ध्यान देते हैं। पहले जब समस्या खड़ी होती थी तो कोई गीता में समाधान खोजता था, कोई महावीर में खोजता था। और आज जब समस्या खड़ी होती है तो कोई मार्क्स में समाधान खोजता है, कोई गांधी में खोजता है। लेकिन दिमाग हमारा वहीं का वहीं है—दूसरों में समाधान खोजने वाला। पहले वह बुद्ध में खोजता था, अब बुद्ध में नहीं खोजता तो गांधी में खोजता है—जैसे कहीं कोई समाधान बने बनाये रखे हों जो हमें मिल जायेंगे।

मेरी समझ यह है कि समस्या का पूरी तरह खुलाव हो जाना ही समाधान बन जाता है। और दूसरी बात यह कि विचार अगर ठीक हो तो क्रांति उससे अनिवार्यरूपेण पैदा होती है। क्रांति को जल्दी लाने की कोशिश नहीं करना चाहिए, अन्यथा पुरानी समस्या तो वहीं उलझी रहती है, नई क्रांति को खड़ा करने में हम नई समस्यायें और खड़ी कर लेते हैं।

पूरे मुल्क में मैं मित्रों से बात कर रहा हूं। मेरी सारी चेष्टा यह है कि किसी भांति मुल्क को सोच विचार के लिए राजी किया जा सके। इसकी चिंता नहीं है कि मैं कोई बंधा बंधाया समाधान उन्हें दे दूं। मेरी चेष्टा यह है कि सारे बंधे बंधाये समाधान उनके लिए व्यर्थ हो जायें और समस्या समाधान से ज्यादा मूल्यवान हो जाये।

सीधी समस्या को देखने की उनकी क्षमता हो जाये तो फिर उस सीधे एनकाउन्टर से समाधान अपने आप निकलेगा। समाधान से क्रांति भी निकलती है, वह रुकती नहीं। तो आज मैं क्रांति के लिए सीधा कुछ भी नहीं कर रहा हूं—अगर इसे क्रांति के लिए ही करना न कहा जाये तो। वैसे मैं इसे क्रांति के लिए ही करना कहता हूं। मित्र इकट्ठे हो रहे हैं, और उनमें बहुत तरह के लोग इकट्ठे हो रहे हैं। एक आदमी सब कुछ कर भी नहीं सकता। आज मैं एक बात कहता हूं; वह आपको ठीक लगती है और लगता है कि उसे कर्म में बदला जा सकता है—क्रांति में लाया जा सकता है, व्यवस्था दी जा सकती है, तो आप देंगे। मैं इसके लिए बहुत चिंतित नहीं हूं। मेरी सारी चिंता यह है कि आपका दिमाग—जो क्रांति पैदा करेंगे उनका दिमाग साफ हो, सोच-विचार पूर्ण हो, अंधविश्वासी न हो, वैज्ञानिक हो। और उन सारी जड़ों से मुक्त हो जाये जिनसे भारत हजारों साल से बंधा है।

बड़े मजे की बात है कि भारतीय कम्युनिस्ट भी एकदम उन्हीं जड़ों से बंधा हुआ है, जिन जड़ों से भारत का कोई पोंगा पंथी बंधा हुआ है। ऊपर से दिखाई नहीं पड़ते लेकिन दिमाग के जो ढांचे हैं वे बहुत गहरे उतर जाते हैं। असल में वह उतना ही विश्वासी है जितना कि काशी का कोई पंडित! विश्वास का आब्जेक्ट भर बदल गया है। उसने गीता की जगह केपिटल को पकड़ लिया है। सारे लोग इसी तरह के हैं।

तो इस सारी स्थिति में मेरी जो चेष्टा है वह यह है, कि सब तरह से हम अपरूट कर सकें दिमाग को। जैसे मैं आपसे कहूं, अभी मैं अहमदाबाद गया था। वहां मुझसे कुछ हरिजन मिलने आये और मुझसे कहने लगे कि गांधीजी तो हरिजन के यहां ठहरते थे, आप हरिजन के यहां क्यों नहीं ठहरते? मैंने उनसे कहा कि मैं तो 'घर' में ठहरता हूं। किसी को हरिजन मैं मानता नहीं हूं इसलिए हरिजन के घर को खोजने का मेरे लिए कोई उपाय नहीं है। फिर मेरा मानना यह है कि हरिजन को चाहे अनादर के लिए रिकगनाइज करो चाहे आदर के लिए—हर हालत में हरिजन को रिकगनीशन मिलता है। और इससे वह मजबूत होता है और बचता है। इससे वह खत्म नहीं होता। तो मैंने उनको कहा कि तुम खुद अपने को हरिजन कहते हो और जरा भी शर्म अनुभव नहीं करते! यह बड़ा मजा हो गया है। अछूत कहने में तो वह भी लज्जा अनुभव करता था लेकिन हरिजन कहने में वह गौरव अनुभव करता है। जैसे किसी बीमारी का कोई अच्छा नाम रख ले और फिर अकड़कर कहे कि हम फलां बीमारी के बीमार हैं! इस लिहाज से अछूत शब्द अच्छा था क्योंकि उसमें चोट थी। हरिजन शब्द बहुत कनिंग और बदमाशी का है।

मेरा कहना यह है कि अगर हरिजन की समस्या सुलझाने आप चल पड़े हैं, और एक तरफ उसे रिकगनीशन भी देते चले जायें तो यह समस्या कभी सुलझने वाली नहीं है। समस्या तो ... .

जार्ज फर्नांडिस : एक सेकेन्ड ! मैं यहां कुछ कहना चाहता हूं क्योंकि हरिजन वाला मामला आ गया। हिन्दुस्तान के हर एक ग्रामीण इलाके में हरिजनों की, या उनको अछूत कहिए या महार कहिए—उनकी बस्तियां अभी भी अलग हैं। उनके कुएं अलग हैं, हर चीज अलग है। शहरों की स्थिति थोड़ी अलग है लेकिन जब शादी विवाह, या मौत वाला मामला आ जाए तब तो यहां भी वही सब चलता है। शहरों का जो हिन्दुस्तान है वह तो केवल ५–१० फीसदी है और गांवों का ९०–९५ फी सदी। तो इस हिसाब से छूत अछूत का जो मामला है वह अभी भी उतनी ही गहराई से चला जा रहा है, जितना पांच हजार साल से चल रहा है। इसको कैसे मिटाया जाये?

आचार्य रजनीश : इसमें ऐसा ख्याल होता है कि जिन लोगों ने इसे अछूत बनाया है वे लोग ही जिम्मेवार हैं और अछूत जैसे बड़ा निर्दोष, बड़ा सरल है और बेचारा सिर्फ विकटिम है—कुछ लोगों ने उसे अछूत बना दिया है। यह बिलकुल ही गलत बात है। बनाने वालों से ज्यादा यह अछूत बनने वाला जिम्मेवार है। वह अछूत

जो गांव के बाहर रह रहा है, वह वहां रहने को राजी रहा है। वह जिसे आप अछूत कह रहे हैं वह भी अपने से छोटे अछूत बनाये हुए है, जिनको वह अपने घर में नहीं घुसने देगा। ऐसे बनिए, ब्राह्मण तो हो सकता है आपको मिल भी जायें जिन्होंने अछूत के लड़के या लड़की से विवाह किया हो लेकिन आपको ऐसा शूद्र न मिलेगा जिसने अपने से नीचे के शूद्र की लड़के लड़की से विवाह किया हो। वह भी अपने भीतर वैसे का वैसा जाल बनाये हुए है। वह अछूत होने के लिए तैयार हुआ है। गुलाम गुलामी के लिए तैयार होता है। और इसमें वह उससे भी ज्यादा जिम्मेवार है जो उसे गुलाम बनाता है। और आज भी कौनसा विद्रोह है उसके भीतर? वह मांग भी क्या कर रहा है मंदिर प्रवेश की! और जो लोग उसे प्रवेश दिलाने की कोशिश कर रहे हैं वे भी गलत कोशिश करते हैं। कोई जरूरत नहीं है—बल्कि उसे साफ कह देना चाहिए कि वह हिन्दु मंदिर में तो घुसेगा ही नहीं, हिन्दु घर में भी नहीं घुसेगा। हिन्दु का पाखाना भी साफ नहीं करेगा। हिन्दु के कपड़े भी नहीं धोयेगा।

जार्ज फर्नाण्डिस : तो मर जायेगा वह ?

आचार्य रजनीश—नहीं! मेरा कहना यह है कि मरने की तैयारी वह एक बार दिखा दे तो हिन्दु मर जायगा। हिन्दु जी नहीं सकता उसके बिना एक क्षण। यह बड़े मजे की बात है कि हम सोचते हैं वह मर जायेगा। उसमें मरने की हिम्मत बिलकुल नहीं है इसलिए वह मरी हुई हालत में है। मैं जो कह रहा हूं फर्नाण्डिस जी, वह यह कि समस्यायें जहां हैं हमें उनकी जड़ों तक जाना चाहिए, पत्तों पर नहीं रुकना चाहिए। मैं यह नहीं कह रहा कि हरिजन मिटे ही नहीं। मिटे! जरूर मिटे! यह सवाल नहीं है। मैं यह कह रहा हूं कि जो आदमी हरिजन को मिटाने चलता है, वह भी हरिजन को इस तरह से रिकगनीशन देता है कि वे रिकगनीशन ही हरिजन को बनाये रखते हैं।

जैसे मैं आपको कहता हूं, गांधीजी हैं, वे हिन्दु-स्तान में हिन्दु-मुसलमान को एक करना चाहते थे। लेकिन गांधीजी की हर एक कोशिश ने हिन्दु मुसलमान को अलग किया है। गांधीजी की सारी कोशिश ने—हिन्दु मुसलमान को एक करने की सारी चेष्टा ने ही हिन्दुस्तान पाकिस्तान बनवाया। क्योंकि एक करने में भी वे कहे यही चले जाते हैं कि 'मैं हिन्दु हूं'। इस एक करने में वे यह नहीं कहते हैं कि कोई हिन्दु नहीं है, कोई मुसलमान नहीं है। वे कहते यह हैं कि हिन्दु भी ठीक, मुसलमान भी ठीक—दोनों भाई भाई हैं। हिन्दु को भी स्वीकार करते हैं, मुसलमान को भी स्वीकार करते हैं। कहते केवल इतना हैं कि दोनों को भाई भाई होकर रहना चाहिए—हिन्दु को हिन्दु रहना चाहिए, मुसलमान को मुसलमान रहना चाहिए। बड़े मजे की बात है, दुश्मनी की जड़ तो यही है—हिन्दु का हिन्दु होना, मुसलमान का मुसलमान होना। लेकिन इसे वो कायम रखे हैं। और इसके बाद भाई भाई कहना बिल्कुल फजूल की बकवास है। बुनियादी बात यह है कि न कोई हिन्दु है, न कोई मुसलमान है। भाई भाई कहने की कोई जरूरत नहीं है—भाई भाई हम हैं।

अभी कलकत्ते में कुछ मित्रों ने बुलाया। उन्होंने कहा "हमने सर्वधर्म सम्मेलन किया है आप उसमें बोलें!"

मैंने कहा मैं नहीं बोलूंगा। क्योंकि पहले मैं यह मानूं कि सब धर्म अलग हैं और फिर मैं यह समझाऊं भी कि वे एक हैं—ऊपर से ही अलग दिखाई पड़ते हैं। नहीं, मैं तो कहता हूं : धर्म अगर है तो एक है, नहीं तो कोई धर्म वगैरह नहीं है। हिन्दु, मुसलमान, जैन, ईसाई—यह सब पागलपन हैं, इनका धर्म से कोई संबंध नहीं है।

तो मैं जो आपसे कह रहा हूं फर्नाण्डिस जी, वह यह कि अगर हमारे सामने समस्या पूरी तरह साफ न हो तो समस्या को सुलझाने वाले भी उसकी बुनियादी जड़ों में वहीं उलझे रहते हैं, जहां से समस्यायें पैदा हुई हैं। वे वहां से तो हटते नहीं ऊपर से सफाई शुरू कर देते हैं। वे कहते हैं कि हरिजन की लड़की से विवाह करो। और मजा यह है कि इसमें भी वे कह यही रहे हैं कि 'हरिजन की लड़की' से विवाह करो। अगर कोई करेगा

तो लोग उसे आदर देंगे। गांधीजी जलसा मनवायेंगे। बड़ा मजा है। हरिजन की लड़की से विवाह करना बड़ी ऐसी बात है, जो ओछी है, और जो हिम्मत करे उसे आदर दो। एक ब्राह्मण, ब्राह्मण की लड़की से शादी करे तब तो कोई आदर का सवाल नहीं उठता। हरिजन की लड़की से विवाह करने वाले को आदर देने की बात में, हरिजन की हीनता की स्वीकृति जारी है। इस तरह वह मिटने वाला नहीं है। उसे अगर मिटाना है तो किन्हीं भी अर्थों में—निगेटिव या पाजिटिव किसी भी तरह की स्वीकृति देना शुरू न करें। किसी भी तरह का रिकग-नीशन आपने दिया तो आप एक नया वर्ग पैदा कर देंगे। अब यह दक्षिण में हो रहा है कि शूद्र एक ब्राह्मण की जगह लेने वाला वर्ग बन रहा है, और आज नहीं कल जो ब्राह्मण ने किया है वह शूद्र करके दिखलायेगा। तब फिर बात वहीं की वहीं रही केवल पागलपन करने वाले बदल गये। नीचे का आदमी ऊपर चला गया ऊपर का नीचे आ गया। कोई फर्क नहीं पड़ रहा है, पागलपन वही का वही जारी है। लेकिन जो यह करवा रहे हैं वे सोचते हैं बहुत प्रगति की, क्रांति की और विचार की बातें करवा रहे हैं।

जार्ज फर्नाण्डिस : मैं इसको दो हिस्सों में बांटना चाहूंगा। जहां तक सामाजिक पहलू है, उसकी जो असलियत है उसको स्वीकार करना ही पड़ेगा। तो इस संदर्भ में मुझे आपको यह बात जंचती नहीं है कि अछूत स्वयं अछूत बनना पसंद करता है। पिछले ५ हजार वर्ष का जो हिन्दु समाज रहा है उस समाज में मनुस्मृति से लेकर जो भी सिलसिला हिन्दुस्तान में चला उस पूरे सिलसिले में हमने हरिजन को अलग रखा।

आचार्य रजनीश : यह अलग क्यों रहा ? क्यों अलग रहने को राजी हुआ ?

जार्ज फर्नाण्डिस : राजी क्यों रहा—समाज के अंदर फिर वह आर्थिक पहलू आ जाता है।

आचार्य रजनीश : क्या ?

जार्ज फर्नाण्डिस : जिसके हाथों सत्ता रही फिर चाहे वह आर्थिक सत्ता रही या राजसत्ता, उसने चाहे जिस ढंग से समाज के एक हिस्से को हटाने का प्रयास किया। उसके सामने ये आदमी कोई काम नहीं कर पाये, खड़े नहीं हो पाये। और आज यह समस्या देश को बनाने में तकलीफ पहुंचा रही है। किसी भी समाज में अगर इस किस्म की दरारें पड़ जायें—कहीं सामाजिक कहीं धार्मिक, तो फिर देश को जिस ढंग से खड़ा होना चाहिए वैसा होना असंभव है।

आचार्य रजनीश : मैं समझा आपकी बात। मेरा कहना यह है कि वे जो दरारें पड़ गई हैं उनकी ठीक आखरी जड़ तक अगर आप नहीं जाते हैं तो दरारों को ऊपर से पाट देने से कुछ हल नहीं होता। दरारें फिर पड़ जायेंगी, हो सकता है इस जमीन पर न पड़े बगल की जमीन पर पड़ जायें। जो मैं कह रहा हूं आपसे वह यह कि केवल हिन्दुस्तान में ही गरीब नहीं रहे, सारी दुनिया में गरीब रहे। लेकिन शूद्र केवल हिन्दुस्तान में ही पैदा हुआ। हिन्दुस्तान में ही धार्मिक सत्ता नहीं रही, सारी दुनिया में धार्मिक सत्ता रही लेकिन शूद्र केवल हिन्दुस्तान में ही पैदा हुआ ! सारी दुनिया में शोषित को अलग करने की और हीन बनाने की कोशिश की गई लेकिन शूद्र जैसा वर्ग हिन्दुस्तान में ही बना। तो शूद्र के बनने में आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक, कोई भी कारण नहीं गिनाये जा सकते क्योंकि वे सारे कारण तो दुनिया की सभी समाजों में मौजूद रहे हैं। इसके लिए तो हिन्दुस्तान के माइंड में ही कोई बात खोजना पड़ेगी जो दुनिया के और किसी माइंड में नहीं रही है। उसी में इस हरिजन के होने की जड़ है। जो कारण कामन हैं उनको आप बहुत मूल्य नहीं दे सकते हैं क्योंकि वे कारण तो दूसरी जगह भी रहे हैं।

इस मुल्क के माइंड में जरूर कुछ बात है जो बहुत गहरे बैठी है। जैसे मैं आपसे कहूं, आप हैरान होंगे जानकर कि हिन्दुस्तान में कर्मफल का जो सिद्धान्त है यह दुनिया की किसी कौम में नहीं है। और इसी कर्म के सिद्धान्त से शूद्र पैदा हुआ है। इसके पीछे हमारे

दिमाग का पूरा ढांचा है जिसने यह सिद्धान्त माना कि जो जैसा कर्म करता है वैसी उसकी गति होती है। शूद्र के घर में पैदा होना पिछले जन्मों के गलत कर्मों का फल है यह इस मुल्क के पूरे दिमाग का ढांचा रहा है। इसे शूद्र भी स्वीकार करता है, ब्राह्मण भी, जैन भी—पूरा मुल्क स्वीकार कर रहा है कि आपने पिछले जन्म में जो नीचे कर्म किये हैं उसकी वजह से आपकी आत्मा शूद्र के घर में पैदा हुई है। यह स्वीकृति इस मुल्क के प्राणों में बैठ गई है और यह स्वीकृति न आर्थिक है, न सामाजिक और न ऐतहासिक। ऐसी स्वीकृति जिस भी मुल्क के प्राणों में बैठ जायेगी उस मुल्क में शूद्र पैदा हो जायेगा। और ऐसी स्वीकृति न हो तो शूद्र पैदा नहीं हो सकता है।

गांधी जैसे आदमी शूद्र को तो मिटाना चाहते हैं, लेकिन कर्म के सिद्धान्त पर जरा भी, इंच भर चोट करने को तैयार नहीं हैं। मेरा मानना है कि यह ऊपर से दरार को पाटना है। यह दरार फिर पैदा हो जायेगी क्योंकि गांधी एक ओर तो यह कहे चले जायेंगे कि कर्म का सिद्धान्त बिलकुल वैज्ञानिक है और दूसरी ओर शूद्र को मिटाना चाहेंगे। अब अगर कर्म का सिद्धान्त वैज्ञानिक है तो वर्ण की व्यवस्था भी वैज्ञानिक हो गई—उसे तोड़ने का कोई सवाल न रहा। इसीलिए हिन्दुस्तान के पांच हजार वर्षों के इतिहास में शूद्रों ने इतना कष्ट भोगा, लेकिन कोई क्रांति नहीं हो सकी, क्योंकि दिमाग का जो ढांचा है उसमें न केवल ब्राह्मण के मन में बल्कि शूद्र के मन में भी स्वीकृति है कर्म के सिद्धांत की। बुद्ध और महावीर ने इतनी कोशिश की कि शूद्र मिट जायें लेकिन चूंकि कर्म के सिद्धान्त को दोनों मानते थे इसलिए शूद्र को नहीं मिटा सके। वे दोनों असफल हुए फिर भी कर्म के सिद्धान्त को इंकार नहीं किए। गांधी भी उसे अस्वीकार नहीं किए इसलिए वह जारी है।

मुझे लगता है, यह रास्ता, जैसा आप कहते हैं कि शूद्र की लड़की के साथ विवाह करो, कुआं खोलो, मंदिर खोलो, उसको विशेष अधिकार दो, सामाजिक व्यवस्था दो—केवल ऊपर की लीपा पोती करना है। हालांकि मैं इंकार नहीं करता कि यह सब मत करो। लेकिन उसके कोई गहरे परिणाम आने वाले नहीं हैं जब तक कि आप उस सिद्धान्त पर चोट नहीं करते हैं, जिससे कि पांच हजार साल पहले दरार पड़ी थी।

जार्ज फर्नाण्डिस : वह तो हिन्दु धर्म की ही बात आ गई ?

आचार्य रजनीश : न, न !—हिन्दु धर्म की ही नहीं पूरे हिन्दुस्तान की—इसमें जैन सम्मिलित है, बौद्ध सम्मिलित है, ईसाई सम्मिलित है।

जार्ज फर्नाण्डिस : ठीक है। इसमें तो मुसलमान भी सम्मिलित है, सभी सम्मिलित हैं। मेरी ही पैदाइस हुई है ईसाई घर में लेकिन मैं मानता हूं कि हिन्दुस्तान का जो ईसाई है वह अभी भी जातपांत को मानता है। ब्राह्मण शूद्र आदि मानता है।

आचार्य रजनीश : वह मानेगा ही क्योंकि हिन्दुस्तान का जो ईसाई है उसका माइंड भी हिन्दु के माइंड से अलग नहीं है।

जार्ज फर्नाण्डिस : बराबर है। वह हिन्दु ही है। यही हालत हिन्दुस्तान के मुसलमान की है।

आचार्य रजनीश : हां, इसीलिए तो मैं कहता हूं—हिन्दु माइंड, हिन्दु धर्म मत कहिए। पूरे हिन्दुस्तान का जो कल्चरल स्ट्रेक्चर है दिमाग का, मेरा जोर....

जार्ज फर्नाण्डिस : एक सेकेंड ..... ! मैं हिन्दु कर के इसलिए कह रहा हूं, पूरे मुल्क के लिए—मैं उस ढंग से ले रहा हूं।

आचार्य रजनीश : ठीक है। अगर पूरे मुल्क के लिए ले रहे हैं तो कोई हर्ज नहीं है।

जार्ज फर्नाण्डिस : लेकिन उस ढंग से लेते हुए भी आज हिन्दुस्तान का जो ईसाई है, मतलब हमारे जैसे जो ईसाई हैं, ये दो सौ चार सौ वर्ष के हैं। वे पुर्तगाली लोगों के बाद के ईसाई हैं। मुसलमान तो आठ नौ सौ साल के

हैं। उसके पहले तो सभी—हमारा तो यहां कोई न कोई रिस्तेदार हिन्दु होगा—किसी मुसलमान का यहां कोई रिस्तेदार हिन्दु होगा ही—तो यह जो सिलसिला चला इसकी जड़ है किसमें ? इसलिए मेरा यह कहना है कि इसकी जड़ जो है हिन्दु धर्म में ही है।

आचार्य रजनीश : हिन्दु धर्म के अंदर न कहकर, मैं जो कह रहा हूं वह यह—कि हिन्दु माइंड के अंदर है।

जार्ज फर्नाण्डिस : आप यह डिस्टिंग्सन कैसे डालते हैं हिन्दु मांइड और हिन्दु रिलीजन में ?

आचार्य रजनीश : मैं ऐसे फर्क करता हूं कि अगर आपने हिन्दु धर्म कहा तो ऐसे लोग भी आपको इस मुल्क में मिल जायेंगे जो हिन्दु धर्म को नहीं मानते हैं लेकिन जिनका माइंड हिन्दु का है। जैसे आपने कहा न कि आपका धर्म ईसाई है, लेकिन माइंड ? माइंड मैं आपका हिन्दु का कहूंगा। हिन्दु धर्म को आप मानते नहीं, हिन्दु धर्म से आपको कुछ लेना देना नहीं है, लेकिन आपका दिमाग हिन्दु का है। एक मुसलमान है—उसका भी माइंड हिन्दु का है। तो मैं जो फर्क करता हूं—उसमें हिन्दु धर्म छोटी सीमा घेरता है, हिन्दु माइंड बड़ी सीमा घेरता है—जैन, ईसाई, मुसलमान, बौद्ध, पारसी सभी उसमें सम्मिलित हो जाते हैं। इसलिए हिन्दु माइंड को मैं बड़ी सीमा मानता हूं, उसमें हिन्दुस्तान की.....

जार्ज फर्नाण्डिस : ठीक है मैं समझ गया।

आचार्य रजनीश : हां तो यह जो हिन्दु माइंड है, इस हिन्दु माइंड में जहां जड़ें हैं शूद्र को पैदा करने की अगर वे जड़ें नहीं काटी जाती हैं, अगर हम वहां विचार नहीं करते हैं, उस बुनियाद को ही नहीं हिला देते हैं, तो ऊपर से हम चाहे जितनी लीपा पोती करलें उससे कोई फर्क पड़ने वाला नहीं है। वह दिमाग फिर से वही स्ट्रेक्चर खोज लेगा।

मैं एक घटना पढ़ रहा था। एक आदमी ने आठ शादियां कीं। पहली बार जिससे शादी की, उससे चार छह महीने में परेशान होकर तलाक दे दिया। दूसरी शादी खूब सोच विचार कर दो साल बाद की। लेकिन छह महीने में ही पाया कि वह भी पहली जैसी साबित हो रही है। उसको भी उसने तलाक दे दिया। इस तरह उसने आठ शादियां कीं और जिन्दगी भर के ८ शादियों के अनुभव के बाद उसने कहा कि बड़ी परेशानी की बात है कि हर बार मैंने फिर उसी तरह की औरत चुन ली। और मेरी जो समस्या पहली औरत के साथ थी वही आठवीं के साथ भी बनी रही।

इसका कारण यह है कि चुनने वाले का दिमाग बुनियादी रूप से वही का वही है। औरतें बदल जाती हैं, पर चूंकि चुनने वाले का दिमाग वही है, इसलिए हर बार वह एक ही ढंग की औरत चुन लेता है। अभी अमेरिका में इस संबंध में सर्वे हुआ, उसमें पता चला कि जो लोग तलाक देते हैं वे आम तौर पर वैसे का वैसा ही पार्टनर फिर से चुन लेते हैं। कुछ समय के बाद पता चलता है कि उन्होंने फिर वही का वही चुनाव कर लिया है।

(समापन अगले अंक में)

★

कृपया ध्यान दें.....

आचार्य श्री ने व्यस्तता के कारण ३०, ३१ अगस्त एवं १ सितम्बर ६९ का कानपुर कार्यक्रम स्थगित कर दिया है। अन्य कार्यक्रम पूर्ववत हैं।

जीवन जागृति केन्द्र, बम्बई द्वारा प्रकाशित

आचार्य रजनीश साहित्य

प्राप्ति स्थल—जीवन जागृति केन्द्र, एम्पायर बिल्डिंग, रूम नं० ५३, दादाभाई नौरोजी रोड, बम्बई–१

हिन्दी साहित्य	मूल्य रुपया
१ साधनापथ	३–००
२ क्रांतिबीज	३–००
३ सिंहनाद	१–५०
४ अमृतकण	०–५०
५ अहिंसादर्शन	०–४०
६ मिट्टी के दिये	३–००
७ पथ के प्रदीप	४–५०
८ मैं कौन हूं	२–००
९ कुछ ज्योतिर्मय क्षण	०–४०
१० नये मनुष्य के जन्म की दिशा	०–४०
११ सूर्य की ओर उड़ान	१–००
१२ प्रेम के पंख	०–७५
१३ सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	१–२५
१४ अज्ञात की ओर	१–००
१५ नये संकेत	१–७५
१६ नई दिशा नई बात	०–३०
१७ व्यस्त जीवन में ईश्वर की खोज	०–२५
१८ न आंखों ने देखा, न कानों ने सुना	०–१५
१९ क्रांति के बीच सबसे बड़ी दीवार	०–३०
२० संभोग से समाधि की ओर	३–५०
२१ आचार्य रजनीश : समन्वय, विश्लेषण, संसिद्धि	७–५०
२२ युवक कौन ? (प्रेस में)	
२३ युवक और यौन ,,	
२४ अन्तर्यात्रा ,,	

मराठी साहित्य	मूल्य रुपया
१ साधनापथ	३–००
२ सिंहनाद	३–००
३ अहिंसादर्शन	०–५०
४ अमृतकण	०–५०
५ क्रांतिबीज	२–५०
६ प्रेमाचे पंख	०–७५

गुजराती साहित्य

१ साधनापथ	२–००
२ क्रांतिबीज	२–००
स्पेशल प्रति	२–५०
३ माटी ना दिया	३–००
,, स्पेशल प्रति	३–५०
४ पथ ना प्रदीप	३–००
५ सिंहनाद	१–२५
६ नवा संकेत	१–७५
७ अमृतकण	०–५०
८ अहिंसादर्शन	०–५०
९ केटलीक ज्योतिर्मय क्षण	०–७५
१० नवा मनुष्य ना जन्म नी दिशा	०–७५

★

Published by

MOTILAL BANARSIDAS

JAWAHAR NAGAR, DELHI–7

1	Who Am I	3·00
2	The Earthen Lamps	3·50
3	Wings of love & Random Thoughts	3·50
4	Seeds of Revolutionary Thought	4·50
5	Philosophy of Non–Voilence	0·80
6	Path of Self Realisation	2·25

आचार्य श्री रजनीश की अमृतवाणी की
त्रैमासिक पत्रिका

"ज्योति शिखा"

(मनुष्य के आध्यात्मिक पुनरुत्थान के लिऐ समर्पित)

सम्पादक : श्री महिपाल

वार्षिक शुल्क : ५ रु० — एक प्रति : १.२५ न.पै.

प्राप्ति स्थल—
जीवन जागृति केन्द्र, एम्पायर बिल्डिंग, रूम नं० ५३,
दादाभाई नौरोजी रोड, बम्बई-१.
फोन : २६४५३०

युक्रांद

आचार्य श्री रजनीशजी की सृजनात्मक जीवन दृष्टि का
पाक्षिक पत्र

देश के कौने-कौने में
आसान शर्तों पर विक्रय एजेन्ट नियुक्त करना है

—सम्पर्क कीजिये—
अरविंदकुमार, सदस्य, युक्रांद प्रकाशन समिति,
कमला नेहरू नगर, जबलपुर । फोन : २९५७.

FOR GOOD MUSIC TUNE IN

'SWAR SANGAM'

EVERY SUNDAY

from : 9-00 to 9-30 p. m.

Over Radio Ceylon

ON

25 AND 49 METER BANDS

ALSO

'SANGAM'

daily from 8-10 to 8-40 p.m.

ON 19 METER BAND

OVER

RADIO VOICE OF THE GOSPEL,
ADDIS ABABA ETHIOPIA

PRODUCED BY *CARAVS* 15, Nehru Marg, JABALPUR (M. P.)

WHERE COURTESY IS YOUR HOST

Quality Restaurant

SADAR JABALPUR

Sole Distributors

FOR

Quality Ice Cream

FOR BEST REPAIRING & SERVICING

of Redios, Transistors

Tape-Recorders & other

Electronic Equipments

Please Contact :—

LALLAN BROS.

CLOCK TOWER

JABALPUR

फोन : २४७७

स्वाधीनता दिवस पर

हमारी हार्दिक शुभकामनायें

भारत आटोमोबाइल्स

३४५, नेपियर टाउन, जबलपुर

(सभी प्रकार के आटोमोबाइल कार्य के विशेषज्ञ)

★ NICKEL SULPHATE
★ NICKEL CARBONATE
★ NICKEL FORMATE
★ SODIUM FORMATE
★ TRI CALCIUM PHOSPHATE B.P.C.
★ PHOSPHORIC ACID
Technical 85% Water White

Manufacturers:

ANANG CHEMICALS

FACTORY:— Kolbad Road
Panch Pakhadi
J. K. Gram
THANA
Maharashtra
Phone—591576

OFFICE:— 20,"L.K.Market"
Zaveri Bazar
Bombay-2 B. R.
Phone—29528

मध्यप्रदेश का गौरव....

निर्माता—

सरगोधा सोप वर्क्स

जबलपुर ।

फोन नं० : २६२०.

स्वास्थ्यप्रद भोजन एवं

उत्तम निवास के लिए पधारिये

रिपब्लिक होटल एण्ड रेस्टारेंट

नौदरापुल, जबलपुर ।

खजुराहो ब्रान्ड

सतना सीमेन्ट

मज़बूत पकड़

विश्वसनीय

टिकाऊ

शक्ति से भरपूर

आपके अरमानों को साकार करता है

हर जगह उपलब्ध

सतना सीमेन्ट वर्क्स सतना (म प्र)

प्रोप्राइटर्स • बिड़ला जूट मैन्यू• कं• लि•

सर्वोत्तम धुलाई के लिए....

— सुप्रसिद्ध —

हँसिया छाप

साबुन

को आप भी अपनाईये

और अन्य साबुनों की तुलना में फर्क अनुभव कीजिए

—० निर्माता ०—

नेशनल सोप इन्डस्ट्रीज

बल्देवबाग, जबलपुर

फोन : ३११९] [तार : ग्रोवर

DEEPAK

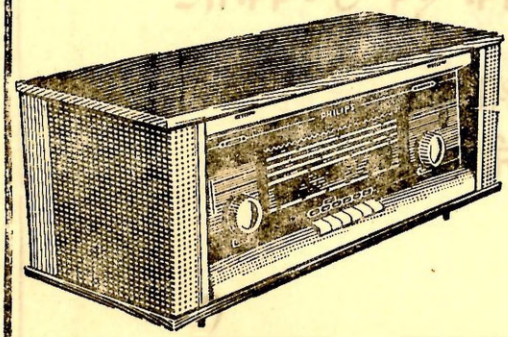

"MAESTRO"

OF

PHILIPS

IS UNBEATABLE & SUPERB

ASK ANYBODY

a radio with a 'Living Sound'

THE PUNJAB HOUSE

SADAR

PHONE : 545

ANDHERDEO

PHONE : 1308

Gram : Union Watch

Phone No. 2832

Union Watch Co.

13, Ganjipura, JABALPUR (M. P.)

Dealers for all kinds of

WATCHES CLOCKES & TIME PIECES ETC.

REPAIRING SPECIALISTS

आधुनिक रहन-सहन के लिये
आरामदायक एवं उच्चकोटि
के सोफा–कम–वेड तथा
वुडन फर्नीचर के
निर्माता :

अशोक फर्नीचर मार्ट

गंजीपुरा मेन रोड, जबलपुर, म. प्र.

FOR BEST MOSAIC TILES

PLEASE CONTACT :

VENUS TILES & MARBLE

Manufacturing Co. (Pvt.) Ltd.

Phone : 327618
327009

OFFICE :—

31, ISRAIL MOHALLA,
BHAGWAN BHAVAN,
1st FLOOR, MASJID BUNDER ROAD,
BOMBAY—9 B. R.

FACTORY AT :—

SIDHPURA INDUSTRIAL ESTATE
MASRANI LANE,
KURLA, BOMBAY—70

उत्तम तम्बाकू और कुशल कारीगरों से बनी

शेर और पहलवान छाप बिड़ी

भारत में अग्रणी है

—o—

मोहनलाल हरगोविंददास

(जबलपुर म० प्र०)

मानसेवी संपादक श्री अजितकुमार एम० काम०, एल एल० बी० द्वारा सम्पादित एवं युक्तांद प्रकाशन समिति, कमला नेहरू नगर, जबलपुर के लिए मुद्रित एवं प्रकाशित । मुद्रण स्थल—जबलपुर को-आपरेटिव प्रिंटिंग प्रेस, जबलपुर.

जो गांव के बाहर रह रहा है, वह वहां रहने को राजी रहा है। वह जिसे आप अछूत कह रहे हैं वह भी अपने से छोटे अछूत बनाये हुए है, जिनको वह अपने घर में नहीं घुसने देगा। ऐसे बनिए, ब्राह्मण तो हो सकता है आपको मिल भी जायें जिन्होंने अछूत के लड़के या लड़की से विवाह किया हो लेकिन आपको ऐसा शूद्र न मिलेगा जिसने अपने से नीचे के शूद्र की लड़के लड़की से विवाह किया हो। वह भी अपने भीतर वैसे का वैसा जाल बनाये हुए है। वह अछूत होने के लिए तैयार हुआ है। गुलाम गुलामी के लिए तैयार होता है। और इसमें वह उससे भी ज्यादा जिम्मेवार है जो उसे गुलाम बनाता है। और आज भी कौनसा विद्रोह है उसके भीतर? वह मांग भी क्या कर रहा है मंदिर प्रवेश की! और जो लोग उसे प्रवेश दिलाने की कोशिश कर रहे हैं वे भी गलत कोशिश करते हैं। कोई जरूरत नहीं है—बल्कि उसे साफ कह देना चाहिए कि वह हिन्दु मंदिर में तो घुसेगा ही नहीं, हिन्दु घर में भी नहीं घुसेगा। हिन्दु का पाखाना भी साफ नहीं करेगा। हिन्दु के कपड़े भी नहीं धोयेगा।

जार्ज फर्नाण्डिस : तो मर जायेगा वह ?

आचार्य रजनीश—नहीं! मेरा कहना यह है कि मरने की तैयारी वह एक बार दिखा दे तो हिन्दु मर जायगा। हिन्दु जी नहीं सकता उसके बिना एक क्षण। यह बड़े मजे की बात है कि हम सोचते हैं वह मर जायेगा। उसमें मरने की हिम्मत बिलकुल नहीं है इसलिए वह मरी हुई हालत में है। मैं जो कह रहा हूं फर्नाण्डिस जी, वह यह कि समस्यायें जहां हैं हमें उनकी जड़ों तक जाना चाहिए, पत्तों पर नहीं रुकना चाहिए। मैं यह नहीं कह रहा कि हरिजन मिटे ही नहीं। मिटे! जरूर मिटे! यह सवाल नहीं है। मैं यह कह रहा हूं कि जो आदमी हरिजन को मिटाने चलता है, वह भी हरिजन को इस तरह से रिकगनीशन देता है कि वे रिकगनीशन ही हरिजन को बनाये रखते हैं।

जैसे मैं आपको कहता हूं, गांधीजी हैं, वे हिन्दु-स्तान में हिन्दु-मुसलमान को एक करना चाहते थे। लेकिन गांधीजी की हर एक कोशिश ने हिन्दु मुसलमान को अलग किया है। गांधीजी की सारी कोशिश ने—हिन्दु मुसलमान को एक करने की सारी चेष्टा ने ही हिन्दुस्तान पाकिस्तान बनवाया। क्योंकि एक करने में भी वे कहे यही चले जाते हैं कि 'मैं हिन्दु हूं'। इस एक करने में वे यह नहीं कहते हैं कि कोई हिन्दु नहीं है, कोई मुसलमान नहीं है। वे कहते यह हैं कि हिन्दु भी ठीक, मुसलमान भी ठीक—दोनों भाई भाई हैं। हिन्दु को भी स्वीकार करते हैं, मुसलमान को भी स्वीकार करते हैं। कहते केवल इतना हैं कि दोनों को भाई भाई होकर रहना चाहिए—हिन्दु को हिन्दु रहना चाहिए, मुसलमान को मुसलमान रहना चाहिए। बड़े मजे की बात है, दुश्मनी की जड़ तो यही है—हिन्दु का हिन्दु होना, मुसलमान का मुसलमान होना। लेकिन इसे वो कायम रखे हैं। और इसके बाद भाई भाई कहना बिल्कुल फजूल की बकवास है। बुनियादी बात यह है कि न कोई हिन्दु है, न कोई मुसलमान है। भाई भाई कहने की कोई जरूरत नहीं है—भाई भाई हम हैं।

अभी कलकत्ते में कुछ मित्रों ने बुलाया। उन्होंने कहा "हमने सर्वधर्म सम्मेलन किया है आप उसमें बोलें!"

मैंने कहा मैं नहीं बोलूंगा। क्योंकि पहले मैं यह मानूं कि सब धर्म अलग हैं और फिर मैं यह समझाऊं भी कि वे एक हैं—ऊपर से ही अलग दिखाई पड़ते हैं। नहीं, मैं तो कहता हूं: धर्म अगर है तो एक है, नहीं तो कोई धर्म वगैरह नहीं है। हिन्दु, मुसलमान, जैन, ईसाई—यह सब पागलपन हैं, इनका धर्म से कोई संबंध नहीं है।

तो मैं जो आपसे कह रहा हूं फर्नाण्डिस जी, वह यह कि अगर हमारे सामने समस्या पूरी तरह साफ न हो तो समस्या को सुलझाने वाले भी उसकी बुनियादी जड़ों में वहीं उलझे रहते हैं, जहां से समस्यायें पैदा हुई हैं। वे वहां से तो हटते नहीं ऊपर से सफाई शुरू कर देते हैं। वे कहते हैं कि हरिजन की लड़की से विवाह करो। और मजा यह है कि इसमें भी वे कह यही रहे हैं कि 'हरिजन की लड़की' से विवाह करो। अगर कोई करेगा